पंचम अध्याय

प्रो॰'मागध' कृत असमिया आलोचना

भूमिका :

प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' जी साहित्य के अनन्य साधक है । उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साहित्य की साधना में उत्सर्गित किया है । उत्तर-पूर्वाचल भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार में इनका योगदान अतुलनीय है । उन्होंने जन्म लिया बिहार में लेकिन उनका कार्यक्षेत्र रहा उत्तर-पूर्वी भारत । 'मागध' जी को अध्यापक, आलोचक, गवेषक, अनुवादक, संपादक, वक्ता, प्रशासक आदि रूपों में काफ़ी ख्याति मिली है ।

डॉ॰ 'मागध' बहुभाषाविद है । वे अपनी मातृभाषा मगही के अतिरिक्त हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला और गुजराती भाषा के भी जानकार है । इसके बावजूद उन्होंने अपना लेखन कार्य मूलतः हिंदी में ही किया है | थोड़े निबंध असमिया और अंग्रेजी भाषा में भी लिखा है । अंग्रेजी में लिखे गए निबंध मूलतः सेमिनारों, गोष्ठियों आदि में पठित है । वैसे निबंध अपेक्षया कम है । असमिया में लिखे गए निबंध कुछ स्वरूचि से है और अधिकांश फरमाइशी । डॉ॰ 'मागध' का लेखन आलोचनात्मक–गवेषणात्मक है । उन्होंने कहा है कि आज साहित्य के बारे में भ्रम फैला है कि यह गुण-दोष कथन मात्र है । आलोचना गुण दोष कथन पद्धति नहीं, साहित्य की परख के लिए विवेकगति है | सहृदय किसी रचना के अध्ययन के पश्चात अपनी प्रतिक्रिया को सम्यक और व्यवस्थित रूप में व्यक्त करता है, तो उसकी अभिव्यक्ति आलोचनात्मक रूप ग्रहण कर लेती है । इस रूप में सहृदय अंतत: अपनी परिमार्जित रुचि और साहित्यिक विवेक का ही अनुगमन करने को बाध्य होता है; किन्तु निर्णय के रूप में वह सूत्र रूप में कुछ कह कर अपना अलग काम चला ले, तो उसे आलोचना नहीं कहेंगे । आलोचक को संस्कृत साहित्य शास्त्र में 'सहृदय' कहा गया है और सहृदय ही सच्चा आलोचक हो सकता है । आलोचना साहित्य की एक विधा है । अस्तु इसे भी काव्य, नाटक, निबंध इत्यादि की तरह रचनात्मक होना होता है । इसी कारण संस्कृत के साहित्य

शास्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि आलोचना में भी रचनात्मक प्रतिभा अवश्य होती है । इलियट का तो विचार है कि बिना आलोचनात्मक प्रतिभा के समालोचना हो ही नहीं सकती ।

समग्र रूप से हम चाहे तो कह सकते है कि समालोचना वह रचनात्मक साहित्य रूप है जो साहित्य कला के सौन्दर्य का परीक्षण और मूल्यांकन करता है । आलोचना के लिए आलोचक में साहित्यकार के समान रचनात्मक प्रतिभा होना आवश्यक है किन्तु कवि, नाटककार, उपन्यासकार इत्यादि होना अनिवार्य नहीं । इसी से जॉनसन की मान्यता में सुधार करते हुए कलरीज़ ने कहा है कि आलोचना के लिए कवि हृदय की आवश्यकता है । भारतीय साहित्यशास्त्र के 'सहृदय' से भी यही तात्पर्य है । सहृदयता का प्रश्न उठाते हुए आनंदवर्धन ने कहा है – 'रसभावादिरूप काव्यस्वरूप परिज्ञान: नै पुण्य' से युक्त है । सहजानुभूति अथवा प्रतिभा आलोचक के आवश्यक गुण है । प्रतिभा दो प्रकार की मानी गयी है – करयित्री और भावयित्री । यह बहुत कुछ जन्मजात होती है । शिक्षा और अभ्यास द्वारा भी यह निर्मित होती है । आलोचक में विचारों की तार्किकता एवं संगति आवश्यक है । उनके अभाव में आलोचना बिखर जाती है । उसे मानव मनोविज्ञान का पारखी होना भी आवश्यक है । सहानुभूति को तो साहित्य का मर्म कहा गया है । जहाँ से पाठक, रचनाकार और आलोचक तीनों प्राय: समान दूरी पर होते है । औचित्य निर्वाह केवल वैसे आलोचक कर पाते है जो सत्यप्रिय, स्थिर विचारवाला और तटस्थ हो अन्यथा आलोचना बेढंगी हो जाएगी । आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की चर्चा बड़े विशद रूप में की है । इसी प्रकार आलोच्य विषय के गंभीर अध्ययन और शब्द मर्मज्ञता के अभाव में भी आलोचना संभव नहीं है । रचनात्मक साहित्य में विविध प्रकार के विषयों का समावेश होता है । यदि आलोचक का ज्ञान विविधतापूर्ण और बहुज्ञतापूर्ण नहीं है तो वह आलोचना में असफल ही रहेगा । आलोचकों में युग की पहचान आवश्यक है । युगानुरुप आलोचना द्वारा ही वह भविष्य निर्माण में संलग्न हो सकता है । कैलेट ने आलोचकों के लिए दार्शनिक प्रवृति आवश्यक बतायी है । वस्तुतः दार्शनिक प्रवृति वैज्ञानिक प्रवृति के अधिक निकट पड़ती है । सामान्य रूप से कहा जाएगा कि आलोचकों में

उपर्युक्त गुणों का उचित रूप में होना आवश्यक है । इनके अभाव में आलोचक की आलोचना बेकार की वस्तु हो जाएगी ।

आलोचना के ध्येय के संबंध में भी विचार होता रहा है । ध्येय के संबंध में संस्कृत-साहित्यशास्त्र में रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति इत्यादि पर विचारधाराएँ आधारित थी । योरोपीय जगत में अरस्तू के सुषमावाद या रीतिवाद तथा नैतिकता, सौंदर्यवाद इत्यादि पर विचारधाराएँ पनपती रही हैं । बाद में वहाँ औचित्य संबंधी सैद्धांतिक, मनोवैज्ञानिक, भौतिकतावादी आदि अनेक प्रकार का ध्येय विकसित होता रहा है । डॉ॰ 'मागध' के अनुसार "आलोचना के प्रकारों पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है, जिनमें दो प्रमुख हैं – आलोचक के दृष्टिकोण की दृष्टि से और उसकी शैली की दृष्टि से । शैली की दृष्टि से आलोचना का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप है – प्रभाववादी आलोचना, जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचना मानते ही नहीं थे । इसी प्रकार एक दूसरा रूप है - ऐतिहासिक या विकासवादी आलोचना का । इसमें ऐतिहासिक विकास की कड़ी के रूप में ही कृतियों का अध्ययन किया जाता है ।"[१]

'मागध' जी का मानना है "सिद्धान्त की सिद्धता साहित्य एवं कला की बुद्धिसंगत व्याख्या करने में ही है, बाधक बनने अथवा उन्हें नियमन करने में नहीं । चाहे रस हो या रीति, अलंकार हो या वक्रोक्ति, ध्वनि हो या औचित्य, अनुकरण हो या विरेचन, संभावना हो या कल्पना, औदात्य हो या आह्लाद, भ्रांति हो या अन्विति, पुरावृत हो या स्वप्न, बिम्ब हो या प्रतीक, कविता अथवा यों कहें कि कोई भी साहित्य विधा केवल किसी एक की सिद्धि नहीं ढूँढती । रुचिकर होने के लिए प्रेषणीयता प्राथमिक आवश्यकता मानी जा सकती है अवश्य । इसे आप भाषा का भावानुकूल प्रयोग कहे अथवा विभावन व्यापार की समर्थता, मेरी दृष्टि में विशेष अंतर नहीं पड़ता ।"[२]

सैद्धांतिक, निर्णयात्मक, तुलनात्मक आदि प्रकार की समालोचनाओं का मूल रूप डॉ॰ 'मागध' जी इसे ही मानते है । अन्य आलोचना पद्धतियों में यह अधिक गत्यात्मक भी स्वीकार की जाती है । डॉ॰ 'मागध' प्रणीत कृतियों में ऐतिहासिक या विकासात्मक, सैद्धांतिक या शास्त्रीय,

व्यावहारिक या व्याख्यात्मक, तुलनात्मक आदि कई प्रकार की समालोचना मिलती है । इसके बावजूद यह मानना असंभव नहीं लगता कि उन्होंने आलोचना की किसी निश्चित पद्धति का अवलंबन नहीं किया है । सामान्यत: विश्लेषणात्मक, गवेषणात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक आदि पद्धतियाँ अनेकबार घुली-मिली प्रतीत होती है । 'मागध' जी ने हिंदी साहित्य में आलोचनात्मक ग्रंथ तो लिखा ही है, लेकिन उनका योगदान असमिया आलोचना साहित्य को अत्याधिक रहा । असमिया साहित्य के महान लेखक श्रीमंत शंकरदेव एवं उनके शिष्य माधवदेव तथा असम प्रांत के राम साहित्य पर विशद अध्ययन करने के पश्चात उन्होंने इन पर आलोचनात्मक कई लेख तथा ग्रंथ लिखे हैं । 'मागध' जी ने हिंदी भाषा के माध्यम से असमिया साहित्य विषयक आलोचनात्मक लेख लिखा है । उन्होंने मूलतः हिंदी में ही लिखा है परंतु असमिया साहित्य विशेषकर आलोचना के क्षेत्र में उनका योगदान द्रष्टव्य है । असमिया रामायणी साहित्य एवं असम में वैष्णव धर्म का प्रवर्तन करनेवाले शंकरदेव एवं माधवदेव पर उनके द्वारा रचित आलोचनात्मक ग्रंथ उल्लेखनीय है । असमिया साहित्य से संबंधित अनेक लेख उन्होंने हिंदी और असमिया दोनों भाषाओ में लिखा हैं । असमिया आलोचनात्मक कृतियों के माध्यम से वैष्णव धर्म के प्रवर्तक शंकरदेव और माधवदेव एवं असमिया समाज व्यवस्था को राष्ट्रीय स्तर पर लाए और भारतीय साहित्य के वङ्मय को समृद्ध किया । उनके द्वारा लिखित राम कथा पर आधारित कृतियों ने असम प्रांतीय कृतिकारों की परमार्थ चेतना, काव्य चेतना, समाज चेतना की सम्यक और प्रमाणिक विश्लेषण किया । 'मागध' जी आलोच्य विषय के भीतर प्रविष्ट हो उसकी आलोचना करते है ।

'मागध' जी द्वारा रचित समस्त असमिया आलोचनात्मक ग्रंथों को गवेषणात्मक आलोचना की कोटी में रखा जा सकता है । गवेषणात्मक आलोचना के घेरे में रखते हुए ही उनकी असमिया आलोचनात्मक कृतियों को अग्रांकित आलोचना की दृष्टि से विचार किया जाएगा- ऐतिहासिक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना तथा व्यावहारिक एवं व्याख्यात्मक आलोचना । उनके द्वारा रचित उल्लेखनीय असमिया आलोचनात्मक ग्रंथ हैं माधवदेव: व्यक्तित्व और

कृतित्व जो व्यावहारिक है, शंकरदेव साहित्यकार और विचारक जो व्यावहारिक अथवा व्याख्यात्मक है, तथा असम प्रांतीय राम साहित्य जो ऐतिहासिक आलोचना है । उनका डी॰ लिट॰शोध प्रबंध 'सूरदास और शंकरदेव के कृष्णभक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' तुलनात्मक आलोचना की कोटि में आता है । आगे असमिया साहित्य विषयक विभिन्न आलोचनाएँ अलग-अलग शीर्षकों के अंतर्गत अध्ययनीय बनायी गयी हैं । असमिया से संबंधित उनका पहला आलोचनात्मक लेख सन 1971 ई॰ में छपा । उसके पश्चात वे निरंतर असमिया में लिखते रहे । आगे उनका विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

5.1 तुलनात्मक आलोचना

तुलनात्मक आलोचना के अंतर्गत डॉ॰ 'मागध' लिखित निम्नांकित रचनाएँ आती हैं ।

(क) सूरदास और शंकरदेव के कृष्ण भक्तिकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन (डी॰ लिट॰ शोध प्रबंध)

(ख) उमापति और शंकरदेव कृत 'पारिजात हरण' संज्ञक काव्य

(ग) हिंदी और असमिया के 'मधुमालती' संज्ञक काव्य

(घ) हिंदी और असमिया के मृगावती संज्ञक काव्य

(ङ) असमिया कृष्ण काव्य और 'सुरसागर'

(च) हिंदी तथा असमिया में भारतेन्दु कालीन नयी चेतना

(छ) हिंदी और असमिया वैष्णव काव्य

(ज) हिंदी और असमिया 'राम काव्य'

(झ) हिंदी और असमिया 'कृष्ण काव्य'

उपर उल्लेखित तालिका में पहला ग्रंथ डी॰ लिट॰ शोध प्रबंध है । दूसरे से छठे तक प्रकाशित लेख हैं और अंतिम तीन उत्तर गुवाहाटी हिंदी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में दिये गए

व्याख्यान हैं जो अभी तक अप्रकाशित है । इन सबके संबंध में आगे क्रमश: विचार किया जा रहा है ।

महापुरुष शंकरदेव को लेकर कुछ पीएच॰ डी॰ शोधप्रबंध तुलनात्मक रूप में लिखे गए थे, पर डी॰ लिट॰ शोध प्रबंध के रूप में डॉ॰ 'मागध' जी द्वारा लिखित 'सूरदास और शंकरदेव के कृष्ण-भक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन' पहली डी॰ लिट॰ शोध प्रबंध है । यह सन 1973 ई॰ में स्वीकृत, डॉ॰ 'मागध' का डी॰ लिट॰ उपाधिपरक शोध प्रबंध है । आलोच्य शोध प्रबंध में 'पूर्ववृत' और 'परिशिष्ट' के अतिरिक्त सात अध्याय है । पहले अध्याय (प्रस्ताविक) में शोधकार्य की आवश्यकता आदि पर विचार हुआ है । दूसरे अध्याय में ही तुलनीय कवियों की कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । तीसरे अध्याय में कृतियों के कारक तत्व विचारणीय बने है । चौथे अध्याय में आलोच्य कवियों के दर्शन, पांचवे अध्याय में भक्ति, छठे अध्याय में काव्य-वर्ण्य और सातवें अध्याय में 'भवभावन' (काव्य-सौष्ठव्य) अध्ययनीय बने है, आठवाँ 'समापन' अध्याय है, जिसमें पूर्व अध्यायों में प्राप्त निष्कर्षों को एकत्र रूप में उपस्थित कर अध्ययन को पूर्णता प्रदान की गयी है । 'परिशिष्ट' में आधार और सहायक सामग्री की सूची रखी गयी है । तुलनात्मक अध्ययन हिंदी शोध की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है । तथाकथन, विश्लेषण, तुलना और मूल्यांकन की इस पद्धति के शोधार्थी को मोटे रूप में साम्य और वैषम्य की सूचियाँ प्राप्त होती है, जिनके आधार पर अध्ययनीय का उत्कर्षापकर्ष प्रमाणित होता है । डॉ॰ 'मागध' का प्रबंध इसी दिशा में विनीत प्रयास है जिसमें उत्तर मध्यकालीन भारतवर्ष के दो समानधर्मी, किन्तु भिन्न भाषा-भाषी प्रतिनिधि कृष्ण भक्ति कवियों के कृतित्वों का इसी पद्धति विशेष से अध्ययन करने की चेष्टा की गयी है । अध्ययन-विश्लेषण के क्रम में यथा स्थान साम्य और वैषम्य विषयक अनेक निष्कर्ष निकाले गए है । 'मागध' जी ने इन दोनों महानुभावों को कैसे चित्रित किया है? और उन्हें शंकरदेव तथा सूरदास में क्या साम्य और क्या वैषम्य मिला है उसका विश्लेषण आगामी पंक्तियों में किया गया हैं ।

उन्होंने प्रस्तुत प्रबंध में कहा है कि व्यक्तिव की दृष्टि से विवेच्य कवियों में साम्य और वैषम्य दोनों ही मिलते है । दोनों अतीव लोकप्रिय है । महापुरुष शंकरदेव के आलोक से असम ही नहीं, पूर्वञ्चल का अधिकांश अब भी आलोकित है और कवि सुर के प्रभाव से समस्त उत्तरांचल प्रभामण्डित है । इस प्रकार दोनों की तप:पूत साधना से भारत का प्राय: उत्तरांचल सांस्कृतिक एकन्वयन प्राप्त कर सका है । दोनों कृष्ण भक्त थे । 'कृष्णस्तु भगवान स्वयं' दोनों का प्रतिपाद्य है, पर शंकरदेव की चेतना जहां दास्य से ओत-प्रोत है, वहाँ सुर की मूलवस्तु माधुर्य भक्ति है । सत्संगति और संत-सभागन ने दोनों को काव्य एवं संगीत में नैपुण्य प्रदान किया था । सुर प्रज्ञा-चक्षु थे तो शंकरदेव ने खुली आँखों से सम्पूर्ण भारत को देखा था, परिणामत: उन्होंने उसकी एकात्मकता को हृदयंगम किया था ।

कृतित्व की दृष्टि से दोनों ने कृष्ण विषयक प्रचुर साहित्य का निर्माण किया है । कृष्ण की बाल एवं किशोर लीलाओं पर भगवतानुक्रमेण सुर रचित पद परिमाण और काव्यत्व दोनों दृष्टियों से अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है । इसके विपरीत कृतित्व की समग्रता और विविधता और संख्यात्मक उपलब्धि की दृष्टि से सुर की अपेक्षा शंकरदेव का महत्त्व किंचित अधिक है । सुर का सुरत्व मुक्तक तक ही सीमित है जबकि शंकरदेव की प्रतिभा प्रबंधकार, नाटककार और आचार्य के रूप में भी खुली-खिली है । शंकरदेव का 'कीर्तन' कुछ अर्थों में 'भगवत' का संक्षिप्त 'गायन' है और 'आदि दशम' उसके दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध) का भावानुवाद । 'भगवत' और 'सुरसागर' की भावभूमि समधरातलीय होकर भी उसमें एकता नहीं है । वह सुर की उदभावात्मक प्रतिभा द्वारा किया गया कृष्ण-लीलाओं का रागात्मक विस्तार है । शंकरी साहित्य ब्रह्म कृष्ण का निरंतर अनुकीर्तन है और सुर काव्य कृष्ण की मानव सुलभ चेष्टाओं और उनके अपरिसीम सौन्दर्य गायन ।

दोनों के कृतित्वों के कारक तत्वों पर गंभीरता पूर्वक विचार करने से स्पष्ट होता है कि भाषा और प्रांतभेद के होते हुए भी उनमें परिवेशगत भिन्नता प्राय: नहीं था । यहीं कारण है कि निर्माण के साधक-बाधक तत्वों की स्पष्ट झलक उनकी रचनाओं में मिलती हैं ।

दोनों के दार्शनिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होता है कि तत्वत: दार्शनिक न तो शंकरदेव है और न सूरदास । दोनों दार्शनिक दृष्टिकोण को अपनाकर चलनेवाले भक्त कवि है । फिर भी शंकरदेव की दार्शनिक मान्यताएँ शंकराचार्य के प्राय: निकट है और सुर के विचार वल्लभाचार्यानुमोदित एवं शुद्धद्वैत सम्मत । उल्लेखनीय है कि दोनों का दर्शन 'श्रीमद भागवत' दर्शन है, जिसे ग्रहण करने के निमित्त प्रथम ने श्रीधरी व्याख्या और द्वितीय वल्लभीय आदर्श को प्रामाण्य माना है । महर्षि व्यास कृत 'श्रीमद भागवत' को समग्रता से स्वीकार करने के बावजूद दोनों की विशिष्टता स्वयं व्यास बनने में है । शंकरदेव आचार्य बल्लभ से पहले हुए । अंत: उनसे प्रभावित होने की बात है ही नहीं । तब भी चूँकि शुद्धाद्वैत दर्शन विष्णुस्वामी से ही प्रारम्भ हुआ था, इसलिए शंकरदेव में परंपरागत शुद्धाद्वैत सम्मत विचार खोजे अवश्य जा सकते है । अस्तु, शंकरदेव और सूरदास के दार्शनिक दृष्टिकोण में वैषम्य की अपेक्षा साम्य का अधिक होना न तो आकस्मिक है और न आश्चर्यजनक । सुर का ब्रह्म सच्चिदानंद, पूर्ण पुरुषोत्तम, सर्वशक्तिमान, अनंत, स्वतंत्र, षडगुणोंभेद, विरुद्ध धर्मश्रयी और अविकृत परिणामी है । शंकरदेव को भी ब्रह्म की उक्त सभी विशेषताएँ मान्य है । दोनों के कृष्ण परब्रह्म है । सुर में ब्रह्म के सगुण स्वरूप की महत्ता का गायन है, किन्तु शंकरदेव ने निराकार कृष्ण को उपास्य माना । जीव, जगत, संसार, माया, मोक्ष इत्यादि के निरूपण में भी दोनों में पर्याप्त साम्य है, पर इनके निरूपण में भी दोनों की मौलिकता स्पष्ट है । दोनों ने लिखा है भक्तिकाल में, पर सुर की अपेक्षा शंकरदेव में दार्शनिक विचार अधिक स्पष्ट और पैनी है ।

भक्ति भावना की दृष्टि से दोनों अन्यतम कृष्ण भक्त है । शंकरदेव की भक्ति एकशरण भक्ति है जबकि आचार्य वल्लभ द्वारा संस्थापित 'पुष्टि संप्रदाय' में दीक्षित होने के कारण सुर

की भक्ति पुष्टि सम्मत । जैसे 'पुष्टि' शब्द 'भगवत' से ग्रहण किया गया है । कदाचित वैसे ही 'शरण' शब्द भी । शंकरदेव का 'एकशरण' और सुरदास की 'शरणागति' वस्तुत: प्रपत्ति के ही अनुकूलित रूप है । भक्ति के प्रकार और उसका साधना क्रम दोनों को मान्य है, पर कृष्ण के नाम और यश का श्रवण-कीर्तन-स्मरण ही शंकरदेव के लिए सर्वस्व है जबकि सूर को इनके अतिरिक्त अर्चनावन्दन इत्यादि भी उतने ही मान्य है ।

दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावों में शंकरदेव की भक्ति मुख्यत: दास्य भाव की है तो सुर की साख्य भाव की । दास्य भाव की प्रचुरता है सुर में भी, पर वल्लभाचार्य का भरोसा पा उन्होंने धीरे धीरे 'घिघियाना' छोड़ दिया । वे अधिक मुँहलगे बन गए । शंकरदेव में दैन्य ही सर्वस्व है । अत: अकारण नहीं कि शंकरदेव में कृष्ण का ऐश्वर्य रूप अधिक निरूपित हुआ है और सुर में उनका रस रूप अनुगुंजित ।

यद्यपि शंकरदेव के कृष्ण को रुक्मिणी-कृष्ण अथवा उद्धव-कृष्ण और सुर के कृष्ण को राधा-कृष्ण कहा जाता है, तथापि दोनों के आराध्यदेव है मात्र श्री कृष्ण ही, रुक्मिणी-कृष्ण अथवा राधा-कृष्ण नहीं । रुक्मिणी और राधा शंकरदेव और सुर की तरह ही कृष्ण की आराधिकाएँ हैं, कृष्ण की स्वरूप सेवा शंकरदेव के यहाँ अस्वीकृत है, सर्वथा निषिद्ध नहीं । उसकी जगह वहाँ 'नाम' सेवा को मिली है, जिसमें 'चार सत्य'- देव, नाम, गुरु और भक्त महत्त्वपूर्ण हो गए हैं । इसके विपरीत पुष्टिमार्ग में स्वरूप सेवा की मान्यता होने के कारण सूरदास ने नित्य सेवा और वर्षोत्सव के गीत गाये । गुरु-महिमा, सत्संगति, भक्ति के विधि-निषेध, कर्म-कांड की अनावश्यकता, भक्ति की सहजता, सार्वजनीनता, व्यापकता, सर्वजन अधिकार आदि के संबंध में दोनों के विचार प्राय: समान है । इतना अधिक अवश्य मानना पड़ता है कि कर्मकांड की निरर्थकता और बाह्याडंबर की व्यर्थता का शंकरदेव ने जिस रूप में आख्यान किया है वह हिंदी संत परंपरा के अधिक निकट प्रतीत है ।

सामग्री-स्रोत की समानता एवं भक्ति आंदोलन की सामान्य अंतरंगता के कारण ही दोनों कवियों के वर्ण्य विषय भी प्रायः समान है । सुर काव्य की तुलना में शंकरी साहित्य इस दृष्टि से मूल सामग्री के अधिक निकट है । मौलिक उद्भावनाएँ शंकरदेव ने भी की है, पर इस दृष्टि से सुर अप्रतिम है । सुर की मौलिक उद्भावनाएँ मूलतः दो प्रकार की है – (क) मूल स्रोत से मात्र रूप रेखा ग्रहण कर उसका सर्वथा स्वतंत्र रूप से विस्तार करना और (ख) कतिपय ऐसे प्रसंगों की उद्भावना करना जो मूल स्रोत में है ही नहीं । राधा और कृष्ण के प्रेम प्रसंगों का विस्तार प्रथम और श्रीधर अंग-भंग, महराने के पांडे की कथा इत्यादि द्वितीय प्रकार के उदाहरण है । शंकरी साहित्य में कृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन प्राय: समानुपातिक है जबकि सुर काव्य में ब्रज लीलाओं का जितना सविस्तार अंकन हुआ है, उतना अन्य का नहीं । पुनः शंकरदेव ने कृष्ण के लोक नायक और ऐश्वर्य रूप पर अधिक ध्यान दिया है । इसलिए वे राक्षस-बध की लीलाओं में अधिक रमे रहे । इसके विपरीत सुर कृष्ण की प्रेम विलास संबंधी लीलाओं में अधिक रमे है । शंकरदेव कृष्ण के अलौकिकत्व के प्रतिष्ठापन के लिए सर्वत्र सजग है । सुर कृष्ण के ईश्वरत्व को भूलते तो नहीं, पर उनके सहज मानवीय रूप के अंकन में अधिक ध्यान देते है । इसीलिए ऐसी अनेक लीलाओं का वर्णन जितना मनोयोगपूर्वक शंकरदेव ने किया है, उतना सूरदास ने नहीं ।

वर्ण्य-विषय की तरह ही सुर काव्य का भाव-पट शंकरी साहित्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत, गंभीर और सूक्ष्म है । वात्सल्य और शृंगार की जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म गंभीर और कलापूर्ण अभिव्यक्ति सुर काव्य में हुई है, वह शंकरदेव की रचनाओं में नहीं वरन अन्य भावनाओं का अधिक विस्तार हुआ है । इनसे इतर भावों और रसों के चित्रण में दोनों प्राय: समान है । इतना अवश्य है कि शंकरदेव की रुचि दास्य भाव की तरह ही काव्य का प्रसाधक पक्ष भी सुर में अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट, प्रांजल और परिमार्जित है । सुर को साधर्म्यमूलक अलंकार अधिक प्रिय है । शंकरदेव के काव्य में साधर्म्यमूलक अलंकार तो प्रयोग हुए है, पर बाहुल्य अनुप्रासादि सामान्य शब्दालंकारों का ही है । सुर के दृष्टिकूट एवं सांगरूपक शंकरदेव के लिए स्वयंवत है

दूसरी ओर युद्ध और नगर का जितना स्वाभाविक वर्णन शंकरदेव ने किया है वह सुर काव्य में प्रयत्नपूर्वक खोजने पर भी प्राय: नहीं मिलता ।

भाषा की दृष्टि से शंकरदेव और सूरदास में विभिन्नता अधिक स्पष्ट है । सुर काव्य की भाषा ब्रज है और शंकरी साहित्य की भाषा मूलतः असमिया । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शंकरदेव ने असमिया से इतर ब्रजावली (कतिपय आंचलिक विशेषताओं से युक्त ब्रजी) में रचनाएँ की है । बरगीत और अंकिया नाटकों की भाषा ब्रजावली ही है । उसमें प्राचीन असमिया के कतिपय प्रचलित प्रयोग पाए जा सकते है, पर उसे असमिया नहीं कहा जा सकता । वस्तुतः वह सुर पूर्व ब्रजी का ही एक रूप है । शंकरदेव की काव्य-भाषा सर्वत्र प्रसाद गुण से सम्पन्न है जबकि कुछ शैली में निबाध्य सुर के पद अर्थ की दृष्टि से दुरूह है । शंकरदेव की भाषा का लालित्य उसकी ऋजुता में है, किन्तु सुर की विद्ग्धता का प्रमुख आधार काव्यभाषा की ध्वन्यात्मकता है ।

संगीतज्ञ और गीतकार दोनों थे । गीतों के लिए भावानुकूल राग-रागिनियों एवं तालों का चयन दोनों ने किया है ।

शंकरदेव और सूरदास के कृष्ण काव्यों में जो व्यापक ऐक्य मिलता है, वह दोनों के मूल आधार ग्रंथों और तत-तत क्षेत्रों के सांस्कृतिक एकन्वयन का परिणाम है । वह भारतवर्ष के भावात्मक ऐक्य का उद्घोषक है । उनमें कहीं-कहीं जो थोड़ा वैषम्य है, उन्हें वैषम्य की अपेक्षा क्षेत्रीय विशेषताएँ कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

पुनः विचार करने से यह भी विदित होता है कि साम्य आंतरिक है और वैषम्य अपेक्षाकृत बाह्य । ब्रज और असम की सांस्कृतिक एकता का इतिहास प्राचीन है । कृष्ण रुक्मिणी परिणय की कदाचित वह प्रथम घटना है जिसे इस दृष्टि से प्रतीक रूप में स्वीकार किया जा सकता है । कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज है और रुक्मिणी परिणय भूमि असम । आज भी बताया जाता है कि उत्तर गुवाहाटी का अश्वकांत मंदिर उस स्थान विशेष पर ही है, जहाँ रुक्मिणी सहित लौटते समय श्री कृष्ण का अश्व क्लांत हो गया था, परिणामत: विश्राम हेतु उन्हें वहाँ रुकना पड़ा था । यो, उक्त

स्थान विशेष के संबंध में दूसरी जनश्रुति यह भी है कि नरकासुर की हत्या के लिए आए श्रीकृष्ण के अश्व की खुर से वह भूमि आक्रांत हुई थी, इसीलिए वह स्थान अश्वकान्त कहा गया । घटना चाहे कोई भी हो, मूल बात है सांस्कृतिक एकता की । पुनः, श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का विवाह भी यहीं शोणितपुर (वर्तमान तेज़पुर) की कन्या उषा से हुआ था । अर्जुन की दो पत्नियाँ चित्रांगदा और उल्लूपी वृहत्तर असम की थी । भीमसेन की पत्नी हिडिंबा की जन्मभूमि हिडिंबपुरी(वर्तमान डिमापुर) भी यहीं थी । अनेक पुरातत्वीय प्रमाण भी ब्रज से लौहित्यकुंड (परशुरामकुंड) तक की सांस्कृतिक एकता के प्रमाण प्रस्तुत करती है । विवेच्य कवि शंकरदेव के पूर्वज यहाँ कन्याकुब्ज से आए थे । वहाँ की सम्पूर्ण संस्कृति और भाषा उनके साथ आयी होगी । शंकरदेव के व्यक्तिव का अधिकांश उसी संस्कृति और भाषा का निर्माण था । तीर्थ-भ्रमण ने इसे और शुद्ध बनाया । अत: आकस्मिक नहीं कि असमिया वैष्णव साहित्य के निर्माण में ब्रज और उसकी संस्कृति ने महत्त्वपूर्ण पहल किया । शंकरदेव एवं अन्य असमिया वैष्णव कवियों द्वारा ब्रजावली में साहित्य रचना करना उसका अन्यतम प्रमाण है ।

शंकरदेव का काव्य न तो पूर्णत: राज्याश्रय में लिखा गया और न सुर की तरह किसी वैष्णव भक्त अथवा आचार्य के आश्रय में । पारिवारिक-सामाजिक उत्तरदायित्व का योग्य निर्वाह करते हुए ही शंकरदेव ने काव्य रचना की है । उनका काव्य जीवन-कुसुम है, वैसा जीवन-कुसुम जो कंटकों से बिंधते रहने पर भी उत्तरोत्तर अपना सौन्दर्य निखारता चलता है । दूसरा कारण दोनों के व्यकित्व से संबंधित है । श्रीमंत शंकरदेव का व्यक्तित्व शुद्ध कवि व्यक्तित्व का न होकर आचार्य, धर्मगुरु, धर्मोपोदेशक, भक्त और जीवन को यथार्थ दृष्टि से देखनेवाले साधक का रहा है । इसीलिए उनके काव्य में सुर काव्य की अपेक्षा वस्तु विश्लेषण की अधिक पूर्णता, जीवन की विविधता, शैलीगत अनेकरूपता और राधा की जगह रुक्मिणी की पात्रता प्राप्त होती है । उसके विपरीत सुर की भक्ति एक निर्द्वंद्व भावुक भक्त का लीलागान है । वैषम्य का तीसरा कारण प्रवृत्यात्मक है । मुख्यत: प्रबंधकार होने के कारण शंकरदेव ने प्रायः कृष्ण चरित के किसी एक अंश तक ही अपने काव्य को सीमित नहीं किया, प्रत्युत समस्त कृष्ण चरित उनके काव्य का

विषय समानुपातिक रूप में बना, जबकि सुर काव्य में बालक और किशोर कृष्ण के चरित का ही सफल और सविस्तार अंकन हुआ है । इसका एक अन्य कारण सुर की सांप्रदायिक दृष्टिभंगी तो है ही, पुनः यह भी अनुमित किया जा सकता है कि शंकरदेव की प्रेरणा पूर्णत: पौराणिक है, जबकि सुर की पौराणिक के साथ साथ वृंदावनीय । वैषम्य का चौथा कारण आंचलिक वैशिष्टय अथवा प्रादेशिक प्रभाव है । असम प्रदेश की लोक-संस्कृति शंकरदेव के काव्य में और ब्रज की लोक-संस्कृति सुर-काव्य में स्थान-स्थान पर प्रतिबिम्बित हुई है । दोनों कवियों द्वारा उल्लिखित आभूषणों, पकवानों, व्यंजनों इत्यादि की नामावलियों में यह विशेषता स्पष्ट रूप में लक्षित होती है । वेश-भूषा और रीति रिवाज के वर्णनों में भी प्रादेशिक प्रभाव सर्वथा स्वाभाविक रूप में आयी है । कृष्ण रुक्मिणी विवाह प्रसंग में उल्लेखित प्रथा जो रुक्मिणी हरण नाटक से उद्धृत है- 'राजा भीष्मक कन्या संप्रदान करिते वर कन्याक केश एक ठाम करिए कत्थे पानी ढालीते ।' सर्वथा आंचलिक लोक जीवन में प्रचलित प्रथा ही है । विवाह के अवसर पर 'मुखचन्द्रिका' भी प्रादेशिक रीति है, जिसका वर्णन शंकरदेव ने किया है । सुर काव्य में 'भौंरा-चकडोरी खेल' (समा॰ 1290) और 'लटठमार होली' जैसे वर्णन भी प्रादेशिक वैशिष्ट्य से ही आए है । बृजांगना के स्वाभाविक अंकन में सुर को अद्वितीय सफलता कदाचित इसीलिए मिली कि उन्होंने उसका निर्माण ब्रज की लोक-संस्कृति से ही किया । यहीं स्थिति शंकरदेव की रुक्मिणी की है । वस्तुतः दोनों कवियों ने अपने देव को लोक-चेतना का केंद्र बनाकर प्रदेश के संस्कारों, लोकाचारों के अनुरूप ही उनका शृंगार किया है । इस प्रकार दोनों का कृष्ण काव्य लोकोम्मुखी काव्य है । सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी स्थान पर वैषम्य साम्य को पराजित नहीं करता, बल्कि वह साम्य को अधिक सुट्टक बनाता है । उसका स्वयं संवत विधायक ही दृष्टिगोचर होता है । डॉ॰ 'मागध' की धारणा है कि गंभीरतापूर्वक विचार करने पर दोनों के जीवन- दर्शन में विभेद प्रायः नहीं रह जाती है ।

शंकरदेव का महत्त्व लोक मर्यादा, लोक मंगल, सामाजिक-संस्कार और कल्याण की दृष्टि से है, कृष्ण को कृष्णत्व से मंडित करने में है । किन्तु उनका धार्मिक आग्रह मुखर है, उनकी

दार्शनिक चेतना प्रबुद्ध है । सुर के 'सुरत्व' का प्रमाण है काव्यात्मक उपलब्धि, काव्यात्मक संरचना, व्यंजना की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति की मार्मिकता । शंकरदेव जन-कंठ के कवि है और सूरदास कवियों के कवि, भाषा पर असीम अधिकार दोनों का हैं, पर वर्णनात्मक कला भिन्न-भिन्न । शंकरदेव की कविता में, पुनुरुक्ति खटकनेवाली प्रणीत होती है, किन्तु सुर काव्य में वहीं सहज और स्वाभाविक है । जहाँ वैष्णव के भिन्न साधनाओं को शंकरदेव ने अपने पांडित्य से समाप्त किया, वहाँ सुर के 'सागर' में पंडित उधो की लुटिया स्वयं डूब गयी । शंकरी साहित्य में भक्ति तल्लीनता ने ज्ञान तत्व का संबल पाकर ही उसे अपने विस्तार से आवृत किया है, पर सुर काव्य में ज्ञान-गुदड़ि, प्रेम-रस की वर्षा में भींग कर दुर्बह हो गयी । शंकरदेव के काव्य में सामाजिक, धार्मिक आदर्शों का संगठनात्मक पक्ष प्रबल है । वे असमिया वैष्णव जागरण के अग्रदूत और प्रतिनिधि विचारक कवि अथवा कवि विचारक है । इसीलिए उनके काव्य का प्रयोजन है – संबोधन, न कि रसात्मक अनुभूति । सूरदास मुख्यत: संवेदनात्मक सजगता, रागात्मक उदात्ता और रसात्मक अनुभूति के कवि है ।

"वस्तुतः जीवन तत्व के प्रति आंतरिक, आस्था, दृढ़ता और ममत्व-परत्व निरपेक्ष सर्वथा आत्मीय सम्बन्धों का जो उदात्त रूप शंकरदेव और सूरदास जैसे भक्त कवियों के काव्यों में प्राप्त है, वह आधुनिक कवियों में विरल है ।"[3] इसीलिए सतत परिवर्तित जीवन-मूल्यों में भी शंकरदेव और सूर का साहित्य आज भी हमारे जीवन का अंतरंग बना हुआ है । पाशविकता की समाप्ति और मानवता के प्रति एक सामान्य दृष्टि की जिस आस्था का अनुकीर्तन इनके कृतित्वों में हुआ है, वह हमारे हृदय को स्पर्श तो करती ही है, हमें इसके लिए आशान्वित भी करती है कि आज नहीं तो कल सुंदर की असुंदर पर विजय अवश्य होगी ।

शंकरदेव की वाणी ने जीवन-दर्शन को एक अनूठी शैली प्रदान की है एवं जीवन को प्राण तत्व दिया है सूर के गीतों ने । सूर के पद जन-मानस में गूँजते अवश्य रहें, पर जनता में शंकरदेव के समान उन्हें लोकप्रियता नहीं मिली । इसका कारण शंकरदेव की अपेक्षा काव्य की सूक्ष्म

ध्वनियों का सूरदास द्वारा प्रयोग किया जाना है । शंकरदेव ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा जो दुर्बोध हो ।

भक्ति दोनों के लिए विधायक धर्म है । निषेधात्मक क्रांति नहीं । निषेध की अपेक्षा उसमें विधि के तत्व अधिक है । दोनों के काव्य का मूल स्वर मानवतावादी है । इस प्रकार दोनों की ईश्वर-कल्पना साम्य भाव की हो जाती है । शंकरदेव के शत्रु-मित्र उदासीन सबातों समान और 'एको छिद न धरन्त हरि' अथवा 'सूर की ख्याम गरीब नि हूँ के गाहक' और 'नाथ अनाथन ही के संग' जैसी उक्तियों में मानव प्रेम ही छलक पड़ता है । मानव-समाज में साम्य भाव की यह व्यवस्था 'कृन्वन्तों विश्वमायीन' का ही समसामयिक उद्घोष है । दोनों ने एक ही सत्य का किंचित भिन्न प्रकार से आख्यान किया है – 'एक सत विप्रा: बहुधा वदन्ती' ।

शंकरदेव और सूरदास ने क्रमश: असम और ब्रज-धरा पर जिस शाश्वत भारतीय साहित्य की रचना शताब्दियों पूर्व की, वह न केवल धार्मिक बल्कि साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी अन्यतम उपलब्धि है । भारतीय राष्ट्र की एकात्मकता के विघटन और विखराव को रोकने की दृष्टि से दोनों कवियों के कृतित्व में राष्ट्रव्यापी परंपरा का जो सम्यक और देश-कालानुरूप नियोजन हुआ है, उसका महत्त्व आज भी बना हुआ है ।

डॉ॰ विमल मजूमदार ने उस संबंध में लिखा है "Indian literature is one though written in different language, keeping this in view Krishna Narayan Prasad has prepared his thesis for the D.Litt. degree. India is one undividable. Each and every Indian shares the same feeling of oneness and brotherhood. Comparative study of the works Sankardeva and Surdas shows that both are belonging to the middle areas. They wrote literary pieces and creates music for spreading of Bhakti Dharma. Both the poets have written their creative pieces based on the Bhagwata: Inspite of this influence of the Bhagwata, both their creative pieces are unique in form. Both their subject matters and literary creations have common features. In view of these major similarities to form subject matter, religious philosophy and aesthetic beauty, it can be concluded that both these poets are similar in thought as far as their creative endeavour is concerned. This uniformity of

presentation has been observed in the research work of Krishna Narayan Prasad 'Magadh'."[४]

डॉ॰ 'मागध' ने डी॰ लिट॰ शोध ग्रंथ के अतिरिक्त भी तुलनात्मक आलोचनाएँ लिखी जिनमें शंकरदेव के 'पारिजात हरण' नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उनके अनुसार 'पारिजात हरण' की रचना 1550 ई॰ के पश्चात हुई थी, उसके पूर्व उमापति ने सन 1325 ई॰ में उसी नाम से 'पारिजात हरण' नाटक लिखा था । शंकरदेव के आलोचकों में सर्वप्रथम कालिराम मेधी ने 'अंकावली' (भूमिका, पृष्ठ 17) में उसे उमापति के 'पारिजात हरण' से कुछ न कुछ प्रभावित कहा था । इसकी देखा-देखी में परवर्ती आलोचक डॉ॰ विरिंचि कुमार बरुआ आदि ने भी डॉ॰ मेधी की बातें दुहराई, लेकिन किसी ने सत्य को जानने की चेष्टा न की । पहली बार डॉ॰ 'मागध' ने 'पारिजात हरण' संग्यक दोनों नाटकों की कथावस्तु गठन, चरित्रांकन, रचना शैली, प्रयोजन और आदर्श, रसोद्‌बोधन और रस निष्पति एवं नाट्य प्रदर्शन इन छह शीर्षक पर अलग-अलग ढंग से गंभीरता पूर्वक विचार किया और निष्कर्ष में बताया कि दोनों में साम्य से अधिक केवल वैषम्य है । उमापति का नाटक अपभ्रंश में है, उसमें केवल आठ गीत ब्रज भाषा से मिलती जुलती भाषा में है । जबकि शंकरदेव का पूरा नाटक ब्रजावली में है, केवल गीत ही नहीं । डॉ॰ 'मागध' के शब्दों में "उमापति और शंकरदेव के 'पारिजात-हरण' नाटकों का विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत तुलनात्मक अध्ययन परीक्षण किया गया । अध्ययन परीक्षण के क्रम में साम्य और वैषम्य के जो विचार बिन्दु स्थापित हुए उनपर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि दोनों में साम्य लगभग नगण्य है । दोनों में वैषम्य अथवा भिन्नता अधिक है । वैषम्य की लम्बी तालिका के आधार पर हम ऐसा निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य है कि शंकरदेव का 'पारिजात हरण' उमापति के 'पारिजात हरण' से सर्वथा अप्रभावित है । कदाचित उसकी प्रेरणा भी शंकरदेव ने अन्यत्र से ही प्राप्त की है । दोनों में जो कतिपय साम्य है, वे प्रेरणा अथवा प्रभाव के प्रमाण नहीं; वरन आख्यान और स्रोत की समानता के परिचायक है । अस्तु, कहा जाएगा कि शंकरदेव का 'पारिजात हरण' कवि की सर्वथा स्वतंत्र और निजी उपलब्धि है ।"[५]

डॉ॰ 'मागध' के उपरी युक्त आलोचना के पश्चात एक बहुत बड़ा अंधकार छटा । अभिप्राय यह है कि इनकी आलोचना के पूर्व शंकरदेव के 'पारिजात हरण' को लोग उमापति की रचना पर आधारित अथवा प्रेरित मानते थे, किन्तु बाद में इनकी आलोचना से यह बात स्पष्ट हुई कि शंकरदेव की रचना पर उमापति का न तो कोई प्रभाव है और न उससे प्रेरित है । शायद शंकरदेव ने उमापति कृत 'पारिजात हरण' का नाम भी नहीं सुना होगा । डॉ॰ 'मागध' की इस मान्यता को लोगों ने माना और स्वीकार किया ।

'असमिया कृष्ण काव्य और सूरसागर' निबंध भी तुलनात्मक आलोचना का उदाहरण है जो 'सुरसागर और भारतीय कृष्ण काव्य' में डॉ॰ नगेंद्र द्वारा संपादित है । उस निबंध में लेखक ने आधुनिक काल में असमिया कृष्ण काव्य का अभाव पाया । डॉ॰ नगेंद्र ने इस पर सवाल उठाते हुए पूछा कि ऐसा क्यों है? "आधुनिक असमिया काव्य में कृष्ण बिल्कुल है ही नहीं, क्या यह जीवन और साहित्य में वैपरीत्य भाव नहीं है ?" ('सुरसागर और भारतीय कृष्ण काव्य' में डॉ॰ नगेंद्र का मन्तव्य) इसके उत्तर में डॉ॰ 'मागध' ने टिप्पणी की है, इनके जीवन में कृष्ण रसे-बसे है और आधुनिक साहित्य में इसका सर्वथा अभाव दिखता है कारण कुछ भी हो सकता है, इसे अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव कहें या बंगला साहित्य का या कुछ और का, वास्तविक सच्चाई इसी में कहीं न कहीं छिपी हुई है ।

तुलनात्मक आलोचना विषयक डॉ॰ 'मागध' द्वारा विरचित 'भारतेन्दु: पुनर्मूल्यांकन के परिदृश्य' पुस्तक जो केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा प्रकाशित है, में मोटे तौर पर 1850 ई॰ से 1900 ई॰ तक जिसे सामान्यत: भारतेन्दु काल या पुनर्जागरण काल कहा जाता है और असमिया में अरुणोदोई युग और जोनकी युग के नाम से जाना जाता है, में शुरू हुई नयी प्रवृतियों पर तुलनात्मक विचार किया गया है । भारतेन्दु ने 1873 ई॰ में हरिश्चंद्र मैगजीन शुरू की और उसमें लिखा 'हिंदी नये चाल में ढली' ठीक वैसे ही 1872 ई॰ में असमिया ने बंगला को अपदस्त कर अपनी स्वतंत्र सत्ता पायी, जिसे 1836 ई॰ में समाप्त कर दी गयी । इस काल खंड में असमिया

और हिंदी दोनों में जिन नयी चेतनाओं का विकास हुआ, डॉ॰ 'मागध' के अनुसार वे हैं – "भाषा की अस्मिता की सुरक्षा एवं उनकी मानकीकरण का प्रयास, स्वदेशी भावना एवं राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति, सुधारवादी दृष्टिकोण, अतीत का उदघाटन, शिक्षा प्रचार और स्वकीय संस्कृति के प्रतिरक्षणशीलता, ज्ञान-विज्ञान के लिए साहित्यिक आदान-प्रदान और संपर्क भाषा की चिंता एवं गद्य-पद्य में नवीन साहित्यिक विधाओं का विकास ।"[६]

इस प्रकार भारतेन्दु युग और उसका समकालीन असमिया साहित्य (अरुणोदोई और जोनकी युग) नयी चेतना की दृष्टि से सही अर्थों में पुनर्जागरण काल कहा जाएगा ।

आकस्मिक नहीं कि उनमें नवीन चेतना के विकास की दृष्टि से ही नहीं प्रायः प्रवृतियों के विकास की दृष्टि से भी साम्य अधिक है । यदि किंचित अंतर दिखते भी है तो उनके मूल में अंचल विशेष की रीति-नीति और स्थानीय परिस्थितियों का अंतर ही है । इस समय भाषा और साहित्य ने अनेक करवटें बदली । नयी चिंतन-धारा और सम्वेदना के विकसित होने के कारण नये अनजाने मार्ग प्रशस्त हुए । निबंधों के अतिरिक्त उनके कई व्याख्यान भी तुलनामूलक हैं । इस दृष्टि से टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, उत्तर गुवाहाटी में दिए गए व्याख्यान यथा हिंदी और असमिया कृष्ण काव्य, हिंदी और असमिया राम काव्य, हिंदी और असमिया प्रेमाख्यान काव्य के नाम आदर के साथ लिए जायेंगे और गौहाटी विश्वविद्यालय में आयोजित पुनश्चर्चा पाठ्यक्रम में दिया गया व्याख्यान हिंदी और असमिया काव्यों में सगुण वैष्णव भक्ति काव्य आदि के नाम लिए जायेंगे ।

हिंदी की तरह असमिया में भी कई प्रेमाख्यान काव्य लिखें गए हैं । जिनमें मधुमालती और मृगावती ये दोनों हिंदी के आख्यानों अर्थात मंझन कृत 'मधुमालती' और कुतुवन कृत 'मिरगवाती' पर आधारित हैं । शेष रचनाएँ भी कल्याण प्रसूत हैं । डॉ॰ 'मागध' ने कुतुवन कृत 'मिरगवाती' और असमिया की रामद्विज कृत 'मृगावती' एवं मंझन कृत 'मधुमालती' और असमिया मधुमालती (लेखक अज्ञात) का भी तुलनात्मक अध्ययन किया । अध्ययन की विशेषता

यह है कि असमिया कवियों ने कथा पूरी तरह से हिंदी कृतियों से ली है, लेकिन सूफी दर्शन तथा उसमें सन्निहित विचार को छोड़ दिया है, उसकी जगह दोनों कवियों ने वैष्णव आदर्श और कृष्ण भक्ति का संदेश दिया है । तुलना का आधार कथा-विधान, चरित्र-विधान, कवित्व-विधान और अभिव्यक्ति-विधान बना है ।

हिंदी और असमिया में रचित मधुमालती और मिरगावती संग्यक काव्य तुलनात्मक अध्ययन तक सीमित है । अत: इस अध्ययन की सार्थकता, नवीनता मौलिकता और विशिष्टता उनके तुलनात्मक विवेचन और मूल्यांकन पदे-पदे लक्षित होता है ।

प्रकृतित: यह ऐतिहासिक अथवा विकासमूलक अध्ययन से भिन्न प्रकार का है । यह मान्य सत्य है कि "रूप-पक्ष और प्राण पक्ष को सम्यक दृष्टि में रखकर किसी ग्रंथ का अध्ययन करना ही उसके साथ न्याय कहा जाता है ।"[७]

अस्तु: प्रस्तुत अध्ययन में भी यही ध्यान रहा है कि अध्ययनीय कृतियों के रूप-पक्ष और प्राण-पक्ष (जो यहाँ क्रमश: अभिव्यक्ति पक्ष और अनुभूति-पक्ष के नाम से अभिव्यक्त हुए हैं) का आवश्यक तत्व उद्घाटित हो जाए, पर उनके आवश्यक विस्तृत उल्लेख न कर डॉ॰ 'मागध' के चर्चा विषयक लेख में यह ध्यान दिया गया है कि लेख वृहत्काय होने से बचाया जाए । आवश्यक तत्व उद्घाटित होने से बच न सके और अनावश्यक का भरसक उल्लेख न किया जाए । आलोचना का उद्देश्य हिंदी और असमिया की मधुमालती और मृगावती में से किसी को उत्तम अथवा अधम सिद्ध करना नहीं है अपितु उन समान विधायक तत्वों को परखने पर दृष्टि अधिक टिकायी गयी है । यही कारण है कि डॉ॰ 'मागध' की इस आलोचना में या तो कहें तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में साम्य और वैषम्य की, काव्य के सुंदर-असुंदर पक्षों की तथ्यावलियों को संयोजित करते समय उनकी दुर्बलताएँ और विशिष्टताएँ सर्वत्र दिख पड़ती हैं । हिंदी और असमिया मधुमालती तथा कुतुवन कृत मृगावती संग्यक काव्यों के कवित्व-विधान के तुलनात्मक अध्ययन के रसास्वादन उपरांत हम कह सकते है कि दोनों रचनाएँ प्रेमाख्यानक होने के बावजूद प्रेम निरूपण में परस्पर

प्रायः भिन्न है । भिन्नता कवियों की भिन्न परंपरा, भिन्न सांप्रदायिक मान्यता और रचनागत उद्देश्य की भिन्नता का सहज परिणाम है- इसे डॉ॰ 'मागध' ने बहुत वारीकी से देखने का सफल तथा स्तुत्य प्रयास किया है । कवि कर्म की कुशलता में अंतर होने के कारण भी दोनों रचनाएँ भावानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति में पर्याप्त भिन्न हो गयी है । इस अवधारणा को डॉ॰ 'मागध' ने स्वकीरा है । डॉ॰ 'मागध' के अनुसार सूफी कवि मंझन कृत मधुमालती तथा कुतुवन कृत मिरगवाती में लौकिक प्रेमकथा साधन है, जिसके द्वारा उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यंजना की है । शैतान लक्ष्य सिद्धि में बाधक तो बनता है, पर अंततः साधक बाधाओं को पार कर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है । उनके अनुसार जीवन में प्रेम ही सर्वस्व है । उनके सारे भाव और विचार प्रेम मूलक है ।[८]

असमिया कवि एवं अन्यों के अनुसार कृष्ण-कीर्तन करना ही जीवन का सर्वस्व है । इसके लिए सांसारिक विषयों, मुख्यतः नारी रूपिणी माया का परित्याग आवश्यक है । नारी कष्टों की जड़ है । प्रत्येक प्राणी को अपना भाग्यलेख भोगना पड़ता ही है, उससे मुक्ति नहीं मिलती । भाग्यलेख की अपरिवर्तनशीलता और नारी रूपाकर्षण जन्य कष्ट की व्यंजना करना ही डॉ॰ 'मागध' के अनुसार मधुमालती और मिरगावती का लक्ष्य है ।[९]

दोनों भाषाओं के कवियों ने अपने-अपने जीवन दर्शन के अनुरूप ही प्रेमानुभूतियों को वाणी प्रदान की है । काव्य का मुख्य वर्ण्य प्रेम है । आलंबनगत सौंदर्य, प्रेमभाव एवं विभिन्न रसों के भावों की अभिव्यक्ति दोनों भाषाओं के काव्यों में हुई है, पर असमिया कवि की तुलना में हिंदी प्रेमाख्यानक कवि प्रत्येक भाव के योग्य निरूपण में अधिक सफल हुए हैं । असमिया कृतियों में कृष्ण भक्ति भाव की अभिव्यक्ति अपेक्षया अधिक उत्तम है । प्रेम भाव का निरूपण मंझन एवं कुतुवन में विस्तृत, विश्वसनीय, मर्यादित और शालीन रूप में हुआ है । असमिया कवि ने उसके निरूपण में अनेकत्र मर्यादा और नैतिकता की सीमा का उल्लंघन तक कर लिया है ।

अभिव्यक्ति पक्ष की दृष्टि से दोनों भाषाओं की कृतियों में वैषम्य की अपेक्षा साम्य अधिक है । मंझन की भाषा में तद्भवता की प्रधानता है, जबकि असमिया कवि में तत्समता की । मुहावरों और लोकोक्तियों का उपयोग दोनों भाषाओं के कवियों ने कौशल पूर्वक किया है । दोनों में सरल-सहज शैली और प्रसाद गुण को समान रूप में महत्त्व दिया है । मंझन और कुतुवन ने दोहा और चौपाई छंदों का प्रयोग किया है, जो हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रयुक्त लोकप्रिय छंद है । असमिया कवि ने भाव के अनुरूप ही पयार, दुलड़ी, छवि, लेछाड़ी और भूभरि छंदों का प्रयोग किया है । राममिश्र के छंदों में यह ज्यादा उत्तम है, किन्तु मृगावती के कवि के साथ ऐसा नहीं कहा जा सकता । बिम्बों के प्रयोग में मंझन अधिक सफल है । उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब वैविध्यपरक और अधिक सटीक है । विभिन्न उत्सवों, प्राकृतिक दृश्यों इत्यादि के वर्णन दोनों कवियों ने किया है, किन्तु दोनों की वर्णन कला और वर्णनगत उपलब्धि में पर्याप्त अंतर है । वर्णन चाहे प्राकृतिक दृश्य के हो या विवाह या विदाई का, मंझन न केवल उसे विश्वसनीय और अपेक्षया अधिक स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करते है, बल्कि पाठकों के मन को छूते भी है । उनके विपरीत असमिया कवि के वर्णन अधिकांश स्थलों पर मात्र स्थानपूर्ति के उदाहरण बनकर रह गए है । मंझन के कवि कौशल का इनमें अभाव है । सब मिला कर कहा जाएगा कि काव्यत्व विधान की दृष्टि से हिंदी 'मृगावती' और 'मधुमालती' असमिया रामद्विज कृत 'मृगावती' और अज्ञात कवि कृत 'मधुमालती' की अपेक्षा अधिक उत्तम कृतियाँ हैं । अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों का जिस योग्यता के साथ निर्वाह उनमें हुआ है, उस योग्यता के साथ इनमें नहीं ।

डॉ॰ 'मागध' का मानना है कि तुलनात्मक अध्ययन यूरोप केन्द्रित विधा है, वहाँ की अवश्यकता के अनुसार इसका जन्म और विकास हुआ । इस संबंध में उनके कुछ निश्चित विचार है, जिसे आगे पृष्ठपेषण करना आवश्यक है ।

तुलनात्मक अध्ययन से निष्कर्ष मिला है कि राष्ट्रीय साहित्य की अपेक्षा विश्वसाहित्य की परिधि विस्तृत है । इसका जन्म अंतराष्ट्रीय गतिविधियों से हुआ है । इससे दो देशों के

साहित्य में साम्य-वैषम्य का ही नहीं, मनोवैज्ञानिक समांतरता का भी पता चलता है । मानव के आवेग और प्रतिक्रियाएँ समान होती है । आवेगों की समता के आधार पर अनेकता से एकता की ओर बढ़ना अर्थात परिधि से केंद्र की ओर जाना है । चित्रों, बिम्बों आदि की समता मनोवैज्ञानिक समांतरता के सूचक होते हैं । समान तथ्यों का संग्रह और विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष को महत्त्व दिया जाता है । इसी कारण कुछ लोग इसे तथ्यांकलन मानते है । कालक्रमिकता के नियम में भी प्रायः ऐक्य दिखायी पड़ता है । कथा रूढ़ियों में समानता से पता चलता है कि साहित्यकार विचार या भाव को नहीं वरन कथा रूढ़ियों का अन्य क्षेत्रों से अधिक ग्रहण करता है । अत: विभिन्न भाषाओं और देशों के साहित्य में प्राप्त समान भावनाओं, विचारों, समस्याओं, परिस्थितियों आदि को पहचानना, रचना के प्रेरक-प्रभावक तत्वों और मानवीय आवेगों की समानता अथवा एकता तक पहुँचना इसकी मूल सिद्धि है । इससे 'वसुधेव कुटुम्बकम' अथवा 'विश्वग्राम' (global village) की मान्यता का पोषण हुआ है । किन्तु, इस प्रकार के अध्ययन के कुछ दुष्परिणाम भी सामने आए है । वस्तुतः अध्ययन के निष्कर्ष प्रायः पक्षपातपूर्ण हो जाया करते है । अस्तु, मिथ्या निष्कर्ष का खतरा सदा बना रहता है । यूरोप और एशिया, पश्चिम और पूर्व में भेद की कल्पना निरर्थक नहीं है । यह अवधारणा यूरोप केन्द्रित रूप में विकसित हुई और आज यह यूरो-अमरीका हो चुकी है । इसका मानदंड भी यूरो-अमरीका हो चुका है । अस्तु, इस प्रकार के अध्ययन को विशिष्ट विधा, कालखंड, परिस्थितियों आदि तक ही सीमित किया जाना श्रेयस्कर है । साहित्य-सौष्ठव को परखने के लिए अलग-अलग देशों की अपनी कसौटियाँ हैं । अस्तु, किसी एक देश द्वारा निर्मित कसौटी पर सभी देशों के साहित्य की परीक्षा करना बेमानी है ।

उत्तरप्रदेश शासन द्वारा 'माधवदेव के नाटक' को विशेष पुरस्कार दिए जाने के बाद डॉ॰ 'मागध' को असमिया साप्ताहिक पत्रिका 'आलोक' ने एक समाचार 'हिंदी लेखक लोई बहा' और 'डॉ॰ मागधर लगत ए खनतेक' शीर्षक से प्रकाशित समाचार और वार्तालाप से विदित है कि डॉ॰ 'मागध' ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा-"हिंदी और असमिया में तुलनामूलक गवेषणा कार्य की अपार संभावना है । इस क्षेत्र में कुछ काम हो चुका है, मुझसे पहले डॉ॰ लालजी शुक्ल और डॉ॰

जितेंद्र नाथ खऔंड ने हिंदी और असमिया मूलक गवेषणा कार्य किया है । गौहाटी विश्वविद्यालय तथा अन्यान्य विश्वविद्यालय भी इस क्षेत्र में कार्य कर रही है ।[१०]

5.2 व्यावहारिक अथवा व्याख्यात्मक आलोचना

'व्यावहारिक' अथवा 'व्याख्यात्मक' आलोचना के अंतर्गत डॉ॰ 'मागध' के अग्रांकित ग्रंथ तथा लेखों को अध्ययनीय बनाया गया हैं –

(क) शंकरदेव साहित्यकार और विचारक (ग्रंथ)

(ख) माधवदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व (ग्रंथ)

(ग) माधवदेव के नाटक (संपादित)

(घ) शंकरदेव के नाटक (संपादित)

(ङ) संदेशरासक (अनूदित)

(च) श्रीमंत शंकरदेव ब्रजावली समग्र

(छ) महापुरुष माधवदेव: ब्रजावली समग्र

(ज) शंकरदेव मूल्यांकन की समस्या

(झ) छावालर वाणी हेन अनुमानि, मनेहुईबा परितोष

(ञ) महेश्वर नेओग: ए क्रिटिक एण्ड लिटेररी हिस्टोरियन

(ट) दि भागवत कल्चर: मीन्स आफ़ पीस एण्ड हारमोनी

(ठ) दि भक्ति मूवमेंट एण्ड एक्ल्ग्रेशन ऑफ दि सवालटर्न्स

इनके अतिरिक्त कई और निबंध भी इसी कोटि में आते हैं । प्रबंध किसी भी गंभीर और महत्त्वपूर्ण शोध ग्रंथ से कम नहीं है ।

असम में वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक थे श्रीमंत शंकरदेव । शंकरदेव को समग्रता, विशदता और प्रमाणिकता से उपस्थित करनेवाला 'मागध' जी द्वारा प्रणीत 'शंकरदेव साहित्यकार और विचारक' नामक ग्रंथ प्रथम हिंदी ग्रंथ तो है ही साथ ही हिंदीतर भाषाओं में अद्यावधि लिखे गए ग्रंथों की तुलना में श्रेष्ठ भी है । असम, असमिया भाषा और असम की जनता के लिए शंकरदेव का महत्त्व वैसा ही है, जैसा हिंदी के लिए तुलसी, सुर और कबीर की बृहत्रयी का । शंकरदेव तथा उनकी रचनाओं के प्रमाणिक तथ्य इस ग्रंथ के माध्यम से हमें प्राप्त होते है । महापुरुष शंकरदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व को हिंदी में प्रमाणिक ढंग से उपस्थित कर डॉ॰ 'मागध' ने अपने लेखकीय उद्देश्य हिंदी अब भारती बन चुकी है को प्रमाणित किया है । ".....(अत:) आवश्यक हो गया है कि भारत की सभी भाषाओं के मूर्धन्य और क्रांतिकारी चिंतकों के विचारों और प्रान्तों की रीति-नीतियों को अपने माध्यम से संजोये और प्रचारित-प्रसारित करके न केवल सार्थक बनाए, अपितु दिशा भी दे ।"[११]

'शंकरदेव: साहित्यकार और विचारक' आलोचनात्मक ग्रंथ में शंकरदेव के जीवन, उनके द्वारा रचित कृतियों का परिचय, काव्यरूप, वर्ण्य विषयवस्तु, भगवत भक्ति, सामाजिक विचार पर प्रकाश डाला गया है । आत्मकथ्य और परिशिष्ठ को छोड़कर पुस्तक में दस अध्याय है । पुस्तक को क्रम देने के लिए इसे दस अध्यायों में बांटा गया हैं । प्रथम अध्याय में शंकरदेव के जीवन को रेखांकित किया गया है । शंकरदेव के पूर्वज, शंकरदेव के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा, पारिवारिक जीवन, सम्पूर्ण भारत भ्रमण, राज्याश्रय आदि पर विचार किया गया है । शंकरदेव ने अपने भारत भ्रमण काल में जो अभिज्ञता प्राप्त की उस पर अपना विचार रखते हुए 'मागध' जी ने कहा है कि "भ्रमण में शंकरदेव को भारतवर्ष की विविधता, अनेकता और विराटता में जिस एकता का प्रत्यक्षीकरण हुआ, मानो वही जगत की अनंतता और विष्णु-कृष्ण की विराटता व सर्वशक्तिमत्ता की प्रतिमूर्ति थी और वही 'कृष्णस्तु भगवान स्वयं' के बोध में परिणत हो उनकी सिद्धि बनी ।"१२ द्वितीय अध्याय में शंकरदेव के रचनाओं पर विचार किया है । 'मागध' जी ने रचना-क्रम, भाषा प्रयोग, बन्ध, तत्व-विश्लेषण, मौलिकता आदि के आधार पर शंकरदेव के

रचनाओं का विश्लेषण किया हैं । पुस्तक में 'मागध' जी ने असमिया लेखक डॉ॰ नेओग ने शंकरदेव के रचनाओं पर जो टिप्पण किया है, यथा-'पुराण कथा को कवि ने परिवर्तित और प्राय: नवीन रूप में उपस्थित किया है' उस पर विचार करते हुए कहा है "कथा विवरण में परिवर्धन अवश्य हो गया है, पर शेष विवरण प्राय: भागवतीय है । भागवतीय कथा को काव्योपयोगी बनाने के लिए नाममात्र की उद्भावनाएं तो की गयी है, पर अन्य कथा-विवरणों में परिवर्तन नहीं हुआ है ।"[१३] इन्हीं से 'मागध' जी के मौलिक विचार का पता चलता है । तृतीय अध्याय में उनके काव्यरूपों का विश्लेषण करते हुए उन्हें कई काव्यरूपों का उद्भावक स्वीकार किया है । काव्यरूप पर विचार करते हुए 'मागध' जी का कहना है कि शंकरदेव की रचनाओं में काव्यरूप का निर्धारण सहज हो जाता है । कम से कम निम्नांकित काव्यरूप उनकी रचनाओं में सहज ही लक्षित होती हैं । यथा- कीर्तन, हरिकथा, लीला, संवाद, गीति, नाटक । चतुर्थ अध्याय में शंकरदेव के रचनाओं के कारक तत्वों और प्रेरणा स्रोतों पर विचार-वर्णन किया गया है । पंचम अध्याय में शंकरदेव के दार्शनिक विचारधाराओं पर विचार किया है । शंकरदेव की दार्शनिकता पर विचार करते हुए 'मागध' जी ने स्पष्ट किया है कि "शंकरदेव अपनी दार्शनिक मान्यताओं की दृष्टि से शंकराचार्य के निकट है; पर उनके जगत और संसार संबंधी विचारों में उनसे किंचित भिन्नता लक्षित होती है । जहां तक संसार की बात है, शंकरदेव उसे मिथ्या, निस्सार, नाशवान, मायिक इत्यादि मानते हैं । यथा : 'अथिर धन जन, जीवन यौवन, अथिर एहु संसार' (बरगीत,१७) ।"[१४] षष्ठ अध्याय में शंकरदेव की भक्ति तथा सप्तम अध्याय में शंकरदेव के समाज-दर्शन एवं सामाजिक विचारधारा पर विश्लेषण किया गया है । अष्टम अध्याय में शंकरदेव के कृतियों की विषय वस्तु के साथ ही पद, आख्यान, भाव-भावन, लालित्य उद्भवन, गीत-संगीत और प्रसाधन-पक्ष आदि पर विचार किया गया है । नवम अध्याय में शंकरदेव द्वारा रचित नाटकों का परिचय, प्रभाव, रचना कौशल आदि पर विचार किया गया है । दशम अध्याय में शंकरदेव के व्यक्तित्व और महत्त्व पर विचार किया गया है । प्रोफेसर डॉ॰ सुनीत कुमार चटर्जी ने 'मागध' जी को लिखे पोस्टकार्ड (6-11-1978) में इस ग्रंथ को शंकरदेव पर तब तक प्रणीत पुस्तकों में सर्वोत्तम (..... the best book so far

written) स्वीकार किया है । पुस्तक पर विचार-विश्लेषण करने पर मिलता है कि प्रथम और चतुर्थ अध्याय में शंकरदेव की जीवनी और उनकी रचनाओं के कारक तत्वों के अंकन का महत्त्व उनकी वस्तु तथ्यता में नहीं, बल्कि योग्य विश्लेषण में निहित है । तथ्यों, घटनाओं या तिथियों से यहाँ अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि किन घटनाओं अथवा परिस्थितियों ने शंकरदेव को कब और किस रूप में प्रेरित प्रभावित किया एवं उनकी रचनाओं में किस रूप में अंकित, चित्रित या प्रक्षेपित हुई है । पंचम, षष्ठ और सप्तम अध्याय में लेखक ने शंकरदेव के दर्शन, व्यक्तित्व और समाज विषयक विचारों का विश्लेषण, परीक्षा और मूल्यांकन किया है । विश्लेषण और परीक्षण के क्रम में अनेक नवीन तथ्य तो उद्घाटित हुए ही हैं, विचारों को नवीन दिशा भी मिली है । तृतीय, अष्टम और नवम अध्याय में शंकरदेव के कवि कर्म के उदघाटन के स्वरूप पर विचार किया गया है । द्वितीय अध्याय में शंकरदेव की रचनाओं का वर्गीकरण एवं संक्षिप्त परिचय उपस्थित किया गया है । यहाँ यह भी विचार किया गया है कि 'भागवत' और 'उत्तराकाण्ड' अनूदित नहीं, बल्कि मौलिक रचनाएँ हैं तथा 'भक्तिप्रदीप' एवं 'हरिश्चंद्रोपाख्यान' विषयक विभिन्न पूर्वाग्रहों और पारंपरिक दृष्टियों को अंत करने के लिए डॉ॰ 'मागध' द्वारा दिए गए तर्क शंकरी काव्य के अध्येताओं को निश्चय ही नवीन ढंग से उद्बोधित करेंगे । ग्रंथ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, नवीन और सर्वथा मौलिक अंश है, शंकरदेव द्वारा प्रयुक्त काव्य रूपों का उदघाटन, विश्लेषण और मूल्यांकन जो तृतीय अध्याय में संयोजित है और शंकरी काव्य सौष्ठव का उदघाटन, विश्लेषण और मूल्यांकन जो अष्टम अध्याय में संयोजित है । यह और भी अच्छा होता यदि अष्टम अध्याय के सभी उपविभाग- वर्ण्य वस्तु, भाव-भावन, लालित्य उद्भावन, गीत, संगीत और प्रसाधन को अलग-अलग अध्यायों में रखा जाता । इन सबको एक ही अध्याय में रखने के कारण उक्त अध्याय बृहदकाय, अन्य अध्यायों का लगभग पाँच गुना हो गया है । प्रसाधन पक्ष के अंतर्गत ब्रजावली पर किया गया व्यवस्थित और शोधपूर्ण विवेचन मध्ययुगीन हिंदी के अंतर्भारतीय विस्तार को स्पष्ट करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाएगी । शंकरदेव के नाटकों पर विभिन्न अध्यायों में यत्र-तत्र विचार तो हुआ ही है, पर उनपर एकत्र व्यवस्थित विचार हुआ है

नवम अध्याय में । जिसमें कई नवीन तथ्य प्रत्यक्ष हुए है । दशम अध्याय में लेखक ने शंकरदेव के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया है । समग्र ग्रंथ के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों का निर्धारण भी यहीं किया गया है ।

सम्पूर्ण ग्रंथ की योजना जितनी सुनियोजित और सुविचारित है, उतना ही प्रत्यक्ष और परोक्ष सामग्री से तथ्यों के संकलन, परीक्षण, वर्गीकरण, महत्त्वांकलन, विश्लेषण, मूल्यांकन तथा तार्किक निष्पतियों से परिपुष्ट भी है । प्राध्यापक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर चेयर एवं विभागाध्यक्ष, आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय (असम) तथा असमिया भाषा और साहित्य के विदग्ध विद्वान एवं गंभीर समालोचक डॉ॰ सत्येन्द्र नाथ शर्मा ने प्रस्तुत पुस्तक के आरंभिकी में स्पष्ट कहा है "आलोच्य ग्रंथ बहुत अध्ययन आरू गवेषणा का फल है । शंकरदेव के द्वारा रचित सभी ग्रंथों का अध्ययन करने के उपरांत उनके बारे जो भी आलोचनात्मक ग्रंथ रचे गए थे, उन्हें परख कर 'मागध' जी स्वकीय सिद्धांत में उपनीत हुए है । इस ग्रंथ ने शंकरदेव की रचनावली को हर दिशा से समेटने का प्रयास किया है ।"[१५]

ग्रंथ की छपाई, बंधाई इत्यादि उत्तम है। शंकरयुगीन अनेक विध चित्रों ने आलोच्य ग्रंथ को बहुमूल्य ही नहीं बल्कि प्रमाणिक भी बनाया है । इस पुस्तक का उललेखनीय विषय है इसका साहित्यिक विचार-विश्लेषण । असम के महामणि शंकरदेव के प्रत्येक ग्रंथ की कहानी या काव्य भाव-रूप के विषय वस्तु का विश्लेषण 'मागध' जी ने किया है । तात्विक विचार, काव्य सौन्दर्य के बारे में भिन्न पक्षों से विश्लेषण किया है । ज़्यादातर ग्रंथ पौराणिक कहानी और वर्णना पर आधारित होने पर भी महापुरुष की स्वकीय प्रतिभा ने किस प्रकार आत्मप्रकाश किया है, समाज को किस तरह प्रतिफलित-प्रभावित किया है – इन सभी विषयों पर डॉ॰ 'मागध' ने अच्छी तरह आलोचना की है । इस ग्रंथ ने महापुरुष शंकरदेव को भारतीय साहित्य एवं सांस्कृतिक पटभूमि में प्रतिष्ठित किया है साथ ही असमिया वैष्णव धर्म, संस्कृति, साहित्य तथा सामाजिक क्षेत्र को भारतीय साहित्य-संस्कृति से न केवल परिचित कराया है बल्कि उसे प्रतिष्ठित भी किया है ।

'असम ट्रिब्यून' के संपादक सतीशचंद्र काकति ने उसकी विस्तृत समीक्षा करते हुए मत व्यक्त किया है "There had been a good number of books in Assamese and English written by Assamese scholars but there is no record to show that any worth while attempt wherever made earlier to bring out a well written book on various aspects of Sri Sankardeva's life and work……. It would perhaps not be any exaggeration to say the book under review will start in motion the work of evaluating Sri Sankardeva. The author has taken a good deal as pains in discussing Sri Sankardeva's life, his literary works, his poetic genius, philosophy, bhakti culture and his all embracing zeal for social reform in ten chapters"[१६]

डॉ॰ भूपेन्द्र राय चौधुरी ने कहा है "Before Dr. Magadh's neither in Assamese nor in English such elaborate assessment on Sankardeva was published. It may be said Sankardeva sahitykar aur vicharak is the magnum-opus of prof. Magadh's scholarly life……. In fine it may be said Dr. Magadh, being a Hindi speaking Professor has been done definitely a praise worthy and laborious works on Shankardeva sincerely and scholarly. Definitely his shankardeva –sahitykar aur vicharak will enrich the oriental study concerning the study of Mahapurusha Shankardeva in particular."[१७]

उपरियुक्त चर्चा से स्पष्ट है कि 'मागध' जी ने आलोच्य कृति में शंकरदेव के साहित्यकार और विचारक रूप को भली-भाँति स्पष्ट किया है ।

कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' ने प्रधानत: भारतवर्ष में प्रचलित हिंदी भाषा के माध्यम से शंकरदेव की चर्चा की है । इस ग्रंथ के द्वारा सर्वभारतीय पर्याय में शंकरदेव को प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है । 'मागध' से पहले किसी ने भी शंकरदेव को हिंदी भाषी राज्य से परिचित कराने का प्रयास नहीं किया था । 'मागध' जी इस दिशा से अग्रगण्य ही नहीं दिशा निर्देशक भी रहे है । असमिया पत्रिका 'अग्रदूत' में एक कॉलम था 'सप्ताह का व्यक्ति' (सप्ताहर मनुहजन), सात मार्च 1979 के उक्त कॉलम में 'शंकरी साहित्यर अध्येता' शीर्षक के अंतर्गत मत व्यक्त करते हुए कहा गया था कि गैर असमिया भाषियों में दो-चार ऐसे व्यक्ति है जिन्होंने शंकरदेव की रचनाओं

का अध्ययन कर उन पर पुस्तक रची है परंतु इन सभी पंडितों में सबसे ज्यादा स्मरणीय बने रहेंगे गौहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यापक डॉ॰ कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' । वहीं 'शंकरदेव साहित्यकार और विचारक' के बारे में कहा गया है कि यहाँ उनके अध्ययनपुष्ट मौलिक दृष्टिभंगी का पता चलता है । विशेष रूप से 'काव्य सौष्टव्य' खंड उल्लेखनीय है । यह एक अलग ग्रंथ ही नहीं संभवत: शंकरदेव के काव्य विषयक यहीं पहली आलोचना है । किशोरी मोहन पाठक के इस कथन से असहमत होने का अब तक कोई कारण नहीं दिखता कि शंकरदेव का काव्य-सौष्टव्य संबंधी विचार अपने में अद्वितीयता का साक्ष्य है ।

कालजयी महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व का इतना प्रमाणिक और गंभीर विवेचन पहली बार और वह भी हिंदी के माध्यम से हुआ है । निश्चय ही डॉ॰ 'मागध' का यह ग्रंथ आगामी कई दशकों तक अनुसंधित्सु विद्वानों, साहित्येतिहासकारों और सुरुचि सम्पन्न पाठकों के लिए उपयोगी, संग्रहणीय और माननीय बना रहेगा ।

शंकरदेव साहित्यकार और विचारक विद्वानों के हाथ में जब आया, तब सामान्य पाठकों के मन में भी यह बात उठी कि ऐसा ही एक स्वतंत्र ग्रंथ असमिया वैष्णव साहित्य के कवि, नाटककार महापुरुष माधवदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व को विश्लेषित करनेवाला होना चाहिए, क्यों कि इसका सर्वथा अभाव था । इसी विचार से उद्वेलित होकर अनेक लोगों ने विद्वान लेखक से उक्त विषय पर ग्रंथ लिखने के लिए आग्रह किया । ऐसा विवेच्य ग्रंथ की भूमिका से स्पष्ट है । वस्तुत: शंकरदेव पर सर्वांगीण रूप से विचार-विमर्श तथा विश्लेषण कर लेने के बाद भी असमिया वैष्णव साहित्य तब तक अधूरा ही रह जाता है, जब तक माधवदेव पर भी विचार न हो जाए । अंत: इस ग्रंथ में पूर्व योजना अकारण नहीं कहीं जाएगी ।

असमिया वैष्णव साहित्य के विविध पक्षों को उद्घाटित करने की दृष्टि से भी 'माधवदेव व्यक्तित्व और कृतित्व' ग्रंथ की अवश्यकता थी ।

'माधवदेव व्यक्तित्व और कृतित्व' ग्रंथ के प्रकाशित होने के पूर्व हिंदी और अंग्रेजी ही नहीं, बल्कि असमिया में भी माधवदेव को सर्वांगीण रूप से समझने-बुझने वाले ग्रंथ का सर्वथा अभाव था इस दृष्टि से आलोच्य ग्रंथ प्रथम होने का गौरव प्राप्त कर लेता है । सच्चाई यह है कि माधवदेव से संबद्ध जो भी सामग्री प्राप्त होती है, वे अत्यंत बिखरी है और वे भी केवल निबंधों में ही । निबंधों की अपनी सीमा होती है, उसमें सर्वांगीण रूप से विषय-वस्तु का प्रतिपादन नहीं हो पाता । दूसरी बात यह है कि उसमें से कुछ निबंध तो मात्र चर्वित-चवर्ण बनकर ही रह गए है । ऐसी परिस्थितियों में प्रस्तुत पुस्तक के लिए सामग्री एकत्र करना निश्चित रूप से श्रम साध्य रहा है । इस दृष्टि से डॉ॰ 'मागध' का श्रम कार्य अत्यंत स्लाघ्य है । 'माधवदेव: व्यक्तित्व और कृतित्व' इस आलोचनात्मक ग्रंथ में 'मागध' जी ने माधवदेव के जन्म से लेकर उनके परिवार, उनका व्यक्तित्व एवं उनके द्वारा रचित बरगीत, नाटक आदि पर विस्तृत चर्चा की है । गवेषणात्मक आलोचनात्मक ग्रंथ होने के कारण इसमें विभिन्न पुस्तकों के साथ ही असमिया विभिन्न लेखकों के अभिमत को भी उद्धृत किया गया है । पुस्तक के 'एकदा' में ही 'मागध' जी को माधवदेव पर कहाँ से सूचना और सामग्री मिली? उसका उल्लेख किया है । यह उनके अध्ययनशीलता और गवेषक रूप का परिचायक है । आलोच्य ग्रंथ परिशिष्ट आदि को छोड़कर छह अध्यायों में विभक्त है । इसका प्रथम अध्याय माधवदेव के जीवनवृत को तथा वंश परंपरा को रेखांकित करता है । यहाँ लेखक ने अंत:साक्ष्य और बहिसाक्ष्य दोनों से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया है और उनके आधार पर ही माधवदेव की वंश-परंपरा स्थिर की है । इसके साथ ही जन्म एवं मरण, शंकर-माधव मिलन आदि पर गवेषणा-पुनर्विवेचन किया है और कहा है कि "शंकरदेव से माधवदेव का साक्षात्कार ही वह घटना एवं उनके मुख से नि:सृत भागवत का श्लोक विशेष ही वह बात है जो माधव के जीवन को नवीन दिशा देती है ।"[१८]

विवेच्य ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में माधवदेव कृत समस्त रचनाओं का मौलिक तथा प्रमाणिक विवेचन किया गया है । लेखक ने अपने अध्ययन के लिए उन्हीं रचनाओं को आधार बनाया है जो श्री पूर्णचन्द्र गोस्वामी द्वारा संपादित 'श्री श्री माधवदेव वाक्यामृत' में संकलित है ।

ऐसा करने के लिए लेखक ने तर्क और प्रमाण भी दिए है । फलत: कहा जाएगा कि इतना होते हुए भी चिंतन-मनन-परीक्षण-अनुशीलन के आधार पर ही रचनाओं को स्वीकारा गया है, जो विभिन्न स्रोतों पर आधारित है । यहाँ उनकी रचनाओं का वर्गीकरण भी कर लिया गया है । माधवदेव की समस्त रचनाओं को चार वर्गों में रखा गया है। वे हैं- बन्ध के आधार पर, तत्व निरूपण के आधार पर, भाषा प्रयोग के आधार पर और मौलिकता के आधार पर । पुन: इनके उपविभाग किए गए है । इसके उपरांत यहाँ श्रव्यकाव्य पर विशद विवेचन किया गया है । 'मागध' जी ने बरगीतों के विषय वस्तु पर चर्चा करते हुए कहा है "विनय और प्रार्थनापरक बरगीत भक्त माधव की दीनता के मर्मस्पर्शी प्रकाशन है । उनका मूल भाव दास्य है जिनमें मकट-किशोर न्याय के अनुसार वे श्री कृष्ण के चरणों से सदा लिपटे रहना चाहते है । उनकी समस्त प्रार्थना-उपासना में विष्णु कृष्ण के गुण और उनके नाम के महत्त्व का निरूपण तथा अपनी दीनता-हीनता का प्रकाशन ही मूल विषय है ।"[१९]

आलोच्य कृति का तृतीय अध्याय दृश्य-काव्य को विवेचित करता है । यहाँ संदिग्ध-असंदिग्ध नाटकों की कुल संख्या बारह बतायी गयी है, किन्तु अद्यावधि उपलब्ध है केवल नौ ही । इसमें पाँच असंदिग्ध और चार संदिग्ध हैं । संदिग्ध माने जानेवाले नाटकों के पक्ष-विपक्ष में सब तर्क प्रस्तुत करते हुए यह स्वीकार किया गया है कि "चार संदिग्ध मानी जानेवाली कृतियों को माधवदेव कृत न मानने अथवा न होने का कोई बहुत सबल कारण प्रतीत नहीं होता । मेरे विचार से ये सभी असंदिग्ध रुपेण माधवदेव कृत प्रतीत होती है ।"[२०] रचना स्थिरीकरण के उपरांत विशिष्ट नाट्य विधा 'झुमुरा' को परिभाषित किया गया है और उसका तत्व निर्धारण किया गया है । लेखक ने 'झुमुरा' के तत्व के रूप में लघु आकार, एक घटना, स्त्री-पात्र बहुल, गीत-वाद्य-नृत्य, एक रस संलाप, अभिनय और निश्चित उद्देश्य को स्वीकारा है । इस आधार पर स्वीकृत समस्त नाट्य कृतियों का विवेचन किया गया है । पुन: उन नाटकों का वस्तु-संगठन एवं रचना-कौशल, भक्ति चेतना और रस परिपाक, चरित्र-चित्रण तथा शक्ति और सीमा के आधार पर विश्लेषण प्रतिपादन किया गया है । इसका अगला अध्याय माधवदेव के कवित्व को विवेचित

करता है । वर्ण्य विषय के आधार पर माधवदेव की समस्त काव्य-कृतियों को रामवृत विषयक और कृष्णवृत विषयक दो उप विभागों में रखा हैं । यद्यपि माधवदेव मूलत: कृष्ण भक्त कवि है, तथापि उन्होंने 'आदिखण्ड' और 'जन्मरहस्य' में राम विषयक कुछ पदों की रचना की है । उनकी अन्य रचनाएँ कृष्णपरक है । वस्तुत: माधवदेव का मुख्य वर्ण्य है- भगवान की लीला । जिस प्रकार शंकरदेव की कृतियों का साहित्यिक मूल्यांकन विशद रूप से किया गया है, उसी प्रकार माधवदेव की कृतियों का भी यहाँ साहित्यिक विश्लेषण हुआ है । विवेचन को क्रमबद्ध एवं प्रमाणिकता प्रदान करने के उद्देश्य से विद्वान लेखक ने माधवदेव की कृतियों के अध्ययन के लिए भाव-भावन, आलंबन, आश्रय, विनयभाव, शरणागति, वात्सल्य, शृंगार(संयोग-वियोग), वीर-करुण, गीत-संगीत, भाषा शैली, छंद, शब्दशक्ति, रीति, गुण, अलंकार इत्यादि को आधार स्तम्भ बनाया है । विवेचन की निपुणता, परीक्षण की निरपेक्षता, मीमांसा की सहृदयता, प्रतिपादन की मौलिकता तथा प्रतिपाद्य की प्रचुरता के कारण यह अध्याय काफ़ी महत्त्व का बना है । निश्चय ही किसी भी पाठक को इस अध्याय से नयी दिशा, नवीन उद्भावना तथा प्रचुर सामग्री उपलब्ध होगी ।

अन्यत्र डॉ॰ 'मागध' ने लिखा है कि माधवदेव की नामघोषा अपने विषय का सर्वप्रथम ग्रंथ है । असल में यह ग्रंथ असमिया वैष्णव साहित्य और असमिया वैष्णव भक्तों के लिए 'गीता' स्वरूप है । असमिया समीक्षक डॉ॰ वाणिकांत काकति के अनुसार 'नामघोषा' ने असमिया जातीय साहित्य में गीता, उपनिषद आदि का स्थान ग्रहण किया है । एक शरण धर्म के महान प्रतिष्ठापक ऐसे ग्रंथ असमिया भाषा में द्वितीय उपलब्ध नहीं है ।"[२१]

पंचम अध्याय में माधवदेव के तत्व-चिंतन को रूपायित किया गया है । वस्तुत: माधवदेव समान रूप से भक्त, कवि और चिंतक थे । ये तीन गुण उनमें इस तरह समाहित थे कि उनको माधवदेव से अलग कर नहीं देखा जा सकता । डॉ॰ 'मागध' ने वहीं गंभीरता और सूक्ष्मता से इन तत्वों का प्रतिपादन किया है । इस क्रम में ब्रह्म, विरुद्ध धर्माश्रयता, विवर्तवाद, अद्वैत निर्गुण, ब्रह्म,

आनंदरूप, सगुण ब्रह्म, अवतार धारण, विष्णुरूप ब्रह्म, भक्त वत्सल भगवान, जीव-जगत, माया, मोक्ष, भक्ति, चार सत्य (देव, नाम, गुरु और भक्त), भक्ति वैशिष्ट्य, भक्ति का अधिकारीत्व, एकमात्र भक्ति: दास्य एवं शरण-प्राप्ति, एकमात्र साधन: नाम-स्मरण-कीर्तन, युग धर्म आदि बिन्दुओं पर विशद रूप से विचार किया है जो गंभीर शोधपरक है । सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ माधवदेव के सिद्धान्त- आदर्शों का समग्रता से अध्ययन हुआ है ।

समीक्ष्य ग्रंथ का अंतिम और छठा अध्याय है व्यक्तित्व और महत्त्व । दूसरे शब्दों में हम उसे निष्कर्ष भी कह सकते है । यहाँ विभिन्न पहलुओं से माधवदेव के व्यक्तित्व के महत्त्व को मूल्यांकित और स्थापित किया गया है । लेखक भी इससे सहमत है । विद्वान लेखक ने अनेक स्रोतों के विभिन्न आधारों पर यह स्वीकार किया है – "उन (माधवदेव) में हिमालयी दृढ़ता, प्रशासनिक गंभीरता, अटूट आत्मविश्वास, अदम्य उत्साह, स्वावलंबन, शीघ्र निर्णय क्षमता, संगठन पटुता, परदुख कातरता इत्यादि का योग्य विकास हुआ था ।"[२२] पुन: उन्होंने महत्त्व प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि "माधवदेव का सम्पूर्ण जीवन इसका साक्ष्य है कि वे शंकरदेव की तरह ही राष्ट्र के एक छोर कामरूप में आविर्भूत होकर समग्र राष्ट्र के गौरव और उसकी त्यागमयी संस्कृति को पहचानकर एक राष्ट्र, एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति के बल संबर्द्धक, अंतर:संघर्ष और बाह्य-विरोध के बावजूद भातृभाव को बढ़ाने की दिशा में एक अनुशासक, एक अखंड चिन्मय राष्ट्र-पुरुष कृष्ण की सेवा में सिद्ध हिन्दू-समाज की आत्मविस्मृत को दूर कर उसका संगठन करना ही अपना जीवन लक्ष्य बना चुके थे । धर्माचार्य, धर्मगुरु, धर्मोपोदेशक, धर्मप्रचारक, आविष्कारक, समाज संस्कारक, लोकनायक, योद्धा, कवि, नाटककार, अभिनेता, गायक इत्यादि के गुणों के एकत्र समाहार और संपुंजन का नाम था महापुरुष माधवदेव ।"[२३] वस्तुत: माधवदेव का बहुआयामी व्यक्तित्व अनोखा था, जिससे हम सदा उत्साहित, प्रोत्साहित और लाभान्वित होते रहेंगे ।

इसके परिशिष्ठ में सन्यासी विष्णुपुरी पर विचार किया गया है और संदर्भ ग्रंथों की तालिका है । यहाँ सन्यासी विष्णुपुरी के जीवन चरित तथा उसकी रचना को अनेक तर्कों के आधार पर प्रमाणिक रूप से विवेचित किया गया है और साथ ही माधवदेव द्वारा अनूदित पदों की सार्थकता पर विचार हुआ है ।

यह स्वीकार किया जाएगा कि आज भी माधवदेव को समग्रता से जानने के लिए एकमात्र ग्रंथ केवल आलोच्य कृति ही है । इसलिए इसके महत्त्व को अस्वीकार करने का प्रश्न नहीं उठता ।

'माधवदेव व्यक्तित्व और कृतित्व' पुस्तक में 'एकेषार' के अंतर्गत प्रो॰ महेश्वर नेओग ने लिखा है "विषय वस्तु का गुण ही पुस्तक को महान बनाती है । डॉ॰ प्रसाद की विश्लेषण प्रक्रिया की अपनी निजी विशेषता है । 'मागध' जी ने महापुरुष की जीवनी, रचनावली, नाटक, काव्य, वेदान्तिक मतवाद और व्यक्तित्व के महत्त्व को छः अध्याय में बाँट कर आलोचना की है । प्रत्येक अध्याय में कृष्ण नारायण की विस्तृत और गंभीर अध्ययन का परिचय निश्चय पाठक को मिलेगा । उनकी मौलिक विचारधारा ने पुस्तक को अपना निजस्व आस्वाद दिया है ।"[२४]

डॉ॰ 'मागध' की आलोचनात्मक पुस्तक 'माधवदेव: व्यक्तित्व और कृतित्व' को माधवदेव को समग्रता से उपस्थित करनेवाली अद्यावधि एकमात्र पुस्तक होने का गौरव प्राप्त है । यह अपने विषय की न केवल अकेली अपितु सर्वप्रथम पुस्तक है ।

प्रो॰ केशवानन्द देव गोस्वामी (डिब्रूगढ़) ने डॉ॰ 'मागध' के नाम एक पत्र (सन 1981) में अशेष धन्यवाद देते हुए लिखा "मेरे जानते प्रस्तुत पुस्तक आपके पांडित्य और विद्वता को प्रत्यक्ष करनेवाली बनी है । किसी भी भाषा में संत कवि (माधवदेव) पर अभी तक लिखी गयी यही एकमात्र अपने आप में पूर्ण कृति है ।"[२५]

भूपेंद्र राय चौधुरी (पूर्व विभागाध्यक्ष एवं प्रोफेसर, गौहाटी विश्वविद्यालय) ने 'आलोक' (नवंबर,1980) में इसकी विस्तृत समीक्षा करते हुए लिखा –"आलोच्य ग्रंथ ही माधवदेव से संबंधित पहला तथ्य संबलित आलोचनात्मक ग्रंथ है । डॉ॰ 'मागध की विश्लेषण प्रकिया की अपनी निजी विशेषता है । तथ्य की प्रमाणिकता, वैज्ञानिक विश्लेषण प्रक्रिया, तात्विक आलोचना, भाषा की प्रौढ़ता और गवेषणा की मौलिकता ग्रंथ को उच्चस्तरीय मर्यादा प्रदान करती है ।"[२६]

आलोच्य पुस्तक की समीक्षा कई हिंदी पत्रिकाओं में भी हुई । यहाँ केवल एक को उद्धृत करना पर्याप्त होगा । हिंदी की प्रतिष्ठित त्रैमासिक आलोचना पत्रिका 'परिषद पत्रिका' (जुलाई, 1981) में डॉ॰ रंजन सुरिदेव ने पुस्तक की समीक्षा करते हुए लिखा है "असमिया साहित्य और संस्कृति के गंभीर अध्येता डॉ॰ 'मागध' द्वारा लिखित यह महनीय कृति माधवदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशद प्रकाश-निक्षेप करने के कारण अपने नाम को यथार्थत: सार्थक करती है ।"[२७]

कृतविद्य लेखक ने माधवदेव के जीवन वृत को प्रस्तुत करने के क्रम में तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवेश को बड़ी ही रोचकता और रुचिता के साथ चित्रित किया है । रचनाओं के विवरण-विवेचन के संदर्भ में लेखक ने माधवदेव की विभिन्न गीत-विधाओं, जैसे भटिमा, घोषा, बरगीत इत्यादि का सांगोपांग प्रतिपादन किया है, साथ ही उनकी नौ प्रकाशित नाटकों के विश्लेषण के निम्मित एक स्वतंत्र अध्याय भी प्रस्तुत किया है ।

माधवदेव के कवित्व की व्याख्या के क्रम में लेखक ने यह सिद्ध किया है कि शंकरदेव का ही काव्य-वैभव माधवदेव की काव्य प्रतिभा का उपजीव्य रहा है ।

कुल मिलाकर, इस कमनीय और महान कृति से माधवदेव के महापुरुषीय सारस्वत व्यक्तित्व का दिव्य दर्शन सुलभ होता है, जिसके उपस्थापन में सुधि लेखक ने पदे-पदे अपनी शोध प्रतिभा का प्रदर्शन किया है ।

निश्चय ही यह कृति पूर्वोत्तर भारतीय साहित्य के अध्ययन की प्रासंगिकता की दृष्टि से अपनी अनुल्लघनीय अनिवार्यता रखती है । परिशिष्ठ में सन्यासी विष्णुपुरी जैसे भक्तिवादी वैष्णव साधक के व्यक्तित्व और कृतित्व का विन्यास मूल विषय के ही पूरक प्रसंग के रूप में हुआ है । निस्संदेह, माधवदेव के महान व्यक्तित्व और कलावरेण्य कृतित्व को समग्रता के साथ परिवेषित करनेवाली यह कृति अपनी द्वितीयता नहीं रखती ।

सन 1974 में प्रकाशित 'माधवदेव के नाटक' में उनकी सभी नाट्य कृतियों (अर्जुन भंजन यात्रा), चोरधारा झुमुरा, भूमि लोटोवा झुमुरा, पिंपरा गुचोवा झुमुरा, भोजन बिहार झुमुरा, ब्रह्ममोहन झुमुरा, भूषण-हरण झुमुरा, कोटोरा-खेलोवा झुमुरा, रास झुमुरा का देवनागरी लिपि में लिप्यान्तरण और प्रकाशन किया । इस कार्य की सराहना हिंदी के विद्वानों ने तो की है, असमिया के विद्वानों ने भी प्रशंसा की । इस प्रकार माधवदेव रचित ब्रजाबली के नाटकों का पहली बार हिंदी में प्रकाशन हुआ । उत्तरप्रदेश शासन ने 1975 ई॰ में इसे अपने आदेश संख्या उत्तर प्रदेश सरकार, शिक्षा (12) अनुभाग सा॰ शि॰ पू॰/196/15-12-1750(38) 75 लखनऊ 226001, दिनांक 29 मार्च 1976 के द्वारा इस पुस्तक को पुरस्कृत किया । इसमें नाटकों के मूल पाठ के पहले माधवदेव का परिचय उनके नाटकों का परिचय और हिंदी के विकासक्रम की व्याख्या है । वस्तुत: ब्रजावली की रचनाएँ निश्चय ही हिंदी के गद्य के विकास को समझने की दृष्टि से अमूल्य निधि है ।

माधवदेव के नाटक की तरह ही सन 1975 ई॰ में 'शंकरदेव के नाटक' का देवनागरी भाषा में लिप्यंतरण और प्रकाशन हुआ । उसमें शंकरदेव के नाटक के मूल पाठ के अतिरिक्त शंकरदेव का परिचय एवं नाटकों के महत्त्व आदि पर लेखक ने गंभीरता पूर्वक विचार किया है । इसका 'पुरोवाक' तत्कालीन भारत सरकार के ऊर्जा राज्य मंत्री प्रो॰ सिद्धेश्वर प्रसाद ने लिखा है । उनके अनुसार "डॉ॰ 'मागध' ने असमिया भाषा और साहित्य का बड़े ही मनोयोग के साथ अध्ययन किया है । असमिया की रचनाओं को हिंदी में प्रस्तुत करने में उनकी सहज ही रुचि रही है । ..... आज हिंदी के माध्यम से देश को सभी भाषाओं के साहित्य को उपलब्ध करने की बड़ी

भारी अवश्यकता है । इससे देश की भावात्मक और सांस्कृतिक एकता को तो बल मिलेगा ही साथ ही साथ हिंदी को व्यापकता और विस्तार भी मिलेगा ।"[२८] इस प्रकार शंकरदेव-माधवदेव द्वारा ब्रजावली में रचित सभी नाटक नागरी लिपि में प्रकाशित होने से हिंदी पाठकों को इस संबंध में पूरा ज्ञान मिल सका । इससे यह लाभ हुआ कि शंकरदेव और माधवदेव जी की सत्ता पहले असम तक सीमित थी, पर वह अब पूरे हिंदी प्रदेश तक फैल गयी । निश्चय ही 'मागध' जी के ये कार्य बड़े महत्त्व के है ।

श्रीमंत शंकरदेव: ब्रजावली समग्र में शंकरदेव रचित सभी नाटक, बरगीत और भटिमाएँ एकत्र रूप में संकलित है, वैसे नाटकों का प्रकाशन सन 1976 में और बरगीतों का प्रकाशन परिषद पत्रिका में पहले भी हुआ था, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में भटिमाओं को मिलाकर एकत्र रूप में पहलीबार प्रकाशित किया गया । पूर्व प्रकाशित बरगीत केवल 34 थे किन्तु श्री बापचन्द्र महंत के अनुसार 35वां बरगीत भी शंकरदेव का ही है । गीत में भटिमा से सिद्ध है कि वह शंकरदेव का ही है । इसे 'मागध' जी ने स्वीकार किया है । भटिमाओं में दो प्रकार की भटिमाएँ हैं- देव भटिमा और राज भटिमा । राज भटिमा में कोचराज नर नारायण की प्रशस्ति है । महापुरुष माधवदेव के नाटकों का प्रकाशन यद्यपि सन 1974 में हुआ था पर डॉ॰ 'मागध' ने 'महापुरुष माधवदेव: ब्रजावली समग्र' में उन्होंने नाटकों के अतिरिक्त बरगीतों और भाटिमाओं को साथ कर प्रकाशित करवाया । इससे हिंदी पाठकों को माधवदेव की ब्रजावली को आस्वादित करने का अवसर मिला । बरगीतों की संख्या के संदर्भ में मतानैक्य हैं- इनकी संख्या को लेकर अलग-अलग राय दी गयी है । इन्होंने बरगीतों के साथ अंकर गीतों को भी एक ही माना है और इस प्रकार इनकी संख्या 188 हो जाती है । इनकी भटिमाएँ दो प्रकार की है: गुरु भटिमा और देव भटिमा । वस्तुत: गुरु भटिमा लेखन के पश्चात ही श्रीमंत शंकरदेव गुरु रूप में सर्वमान्य हुए । उसकी आरंभिक पंक्तियाँ अग्रांकित हैं

"जग गुरु शंकर सर्व गुणाकार, यकेरी नाहि के उपाम ।

ताहेरी चरणक रेणु शतकोटी बारेक करोहों प्रणाम ॥" (महापुरुष माधवदेव ब्रजवाली समग्र)

देव भटिमाओं की संख्या आठ है । एक भटिमा से कुछ पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप रखी जाती है ।

"प्रातु समये यशोदा जननी, मुख चुंबित श्याम जगावत को ।
उठ मेरे लाल मदन गोपाल, आवे तेरे ग्वाल बोलावन को ॥"

भटिमाएँ मूलतः प्रशस्ति गीत है । गुरु भटिमाएँ गुरु की और देव भटिमाएँ देव की प्रशस्ति गीत है ।

नाट्य कृतियों में एक अंकिया नाट और शेष झुमुरा है । झुमुरा की विशेषता लघुता में है जो 'विल्वमंगल स्रोत' के श्लोक पर आधारित है ।

असमिया एम॰ ए॰ की कक्षा में संदेशरासक का एक अंश पढ़ाया जाता रहा है । असमिया में वह प्रकाशित नहीं थी । डॉ॰ 'मागध' ने असमिया अक्षरों में मूलपाठ, संस्कृत अवचूरीका और असमिया अनुवाद सहित असमिया अक्षरों में प्रकाशित किया । इससे असमिया साहित्य भंडार की बृद्धि तो हुई ही, साथ ही एम॰ ए॰ पढ़ने वाले असमिया छात्रों के लिए भी सबसे अधिक लाभदायक हुई । डॉ॰ 'मागध' ने मूलपाठ के पहले 75 पृष्ठों में रासक, संदेशरासक रचयिता का परिचय, संदेशरासक का रचना काल, काव्यरूप, वस्तु वर्णन (नगर वर्णन, नारी सौंदर्य और औपम्य विधान, विरह वर्णन और संदेश-प्रेषण, प्राकृतिक वर्णन) संदेशरासक की भाषा, छंद विधान और उपक्रमों पर विस्तार से विचार किया है । मूल पाठ के बाद शब्दार्थ सूची, संदेशरासक में नीति कथा और परिशिष्ठ के अंतर्गत विशेष नामों की तालिका, छन्द नामों की तालिका, व्यवहृत छंदों का उल्लेख हुआ है । इस प्रकार पुस्तक बहुत ही सार्थक सिद्ध हुई है ।

अपभ्रंश साहित्य में संदेशरासक महत्त्वपूर्ण रचना है । अपभ्रंश के स्वच्छंद कवियों में अद्दहमाण (अब्दुरर्हमान) का नाम लिया जाएगा । इनकी कृति 'संदेशरासक' कालिदास के 'मेघदूत' के ढंग पर लिखा गया संदेश-काव्य है । संदेश वहन का कार्य करता है यहाँ पथिक । प्रोषितमतृका नारी ने पथिक द्वारा संदेश भेजा है । अनेक युक्तियों के पश्चात आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका रचना-काल ग्यारहवीं सदी स्थिर किया है । यह एक विरह-काव्य है, जिसकी रचना तीन प्रक्रमों में की गयी है । इसमें कुल 223 छंद हैं । काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से अपभंश साहित्य में इसका विशेष महत्त्व है । संदेश-कथन में कवि ने नारी हृदय की परवशता, आकुलता, विदग्धता इत्यादि के वर्णन में अपनी समस्त प्रतिभा लगा दी है । इसमें कवि ने षडऋतु का वर्णन सीधे-सादे किन्तु प्रभावमुलक ढंग से किया है । शरद ऋतु का वर्णन करते हुए नायिका का यह अनुमान करना कि क्या वहाँ शरद का एकाशिश अपनी ज्योत्सना नहीं बिखरता? क्या अरविन्दों के बीच कलहंस नहीं कुंजते ? क्या वहाँ कोकिला पंचम स्वर से नहीं गाती? सूर्योदय के कारण खिले कुसुमों से क्या वातावरण मादक नहीं होता? यदि यह सब होता ही है, तो उसका प्रिय इतना अनासक्त क्यों हो गया जिसे घर की याद नहीं आती? इत्यादि बातें बड़ी प्रभावकारी हो गयी है ---

"कि तहि देस शाहु फुरद जन्ह निसि निम्मल चंद्रह ।
अह कलरउ न कुणति हंस फल सेवि रविदह ।
अह पायउ पहु पढ़इ कोई सुललिय पुण राहण।
अह पंचउ कुणई कोई कावालिय माइण ॥"[२९] संदेशरासक

निश्चय ही यह विरह काव्य अपनी मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए बेजोड़ है ।

'मागध' जी ने स्पष्ट किया है कि नई कविता उसी समय से शुरू होती है जिसमें मार्क्सवादी रुझान आ जाता है । इस लम्बे आलेख में अनूदित कविताओं के आधार पर उन्होंने कहा है –'आज की कविता थोड़े शहरी बुद्धिजीवियों और विश्वविद्यालीय लोगों की उपज होने के

परिणाम स्वरूप सामान्य ग्रामीण जन और अधिक संख्यक पाठकों से दूर होती जा रही हैं ।' श्रेष्ट समझी जानेवाली आधुनिक कविताओं में उन समस्याओं का किंचित स्पर्श भी नहीं हुआ है । तब हमें ऐसा लगता है कि ये कविताएँ कृत्रिम और शायद बकवास ही अधिक है । ऐसा निष्कर्ष निकालना असत्य नहीं कि यह कविता धारा असम की वास्तविक मन:स्थिति का सही साक्ष्य उपस्थित करने में विफल सिद्ध हुई है ।

'ब्रजावली: अंकिया नाट आरू बरगीतर भाषा' नामक निबंध काफ़ी लम्बा(40 पृष्ठ) है । इस निबंध में ब्रजावली की उत्पत्ति, ब्रजावली की कृत्रिम भाषा, ब्रजावली का विकास, स्वतंत्र भाषा के रूप में ब्रजावली के प्रथम कवि, ब्रजावली की अध्ययन की समस्याएँ, शंकरदेव की ब्रजावली आदि शीर्षकों के अंतर्गत बहुत विस्तार से विचार करते हुए अंत में लेखक ने ब्रजावली और हिंदी के सम्बन्धों पर विचार किया है । इस प्रकार यह निबंध पूरा हुआ है । असमिया में ब्रजावली पर पहली बार डॉ॰ 'मागध' ने ही विचार किया है, इस प्रकार यह ऐतिहासिक महत्त्व का निबंध तो है ही विवेचन-विश्लेषण की दृष्टि से भी अनुपम है ।

'महापुरुष माधवदेव के कृष्ण' शीर्षक निबंध उत्तर लखीमपुर की साहित्य सभा के विवेचन में प्रकाशित स्मारिका में संकलित है । इसमें लेखक ने माधवदेव के सम्पूर्ण साहित्य में वर्णित श्रीकृष्ण के विभिन्न पक्षों पर विस्तारपूर्वक विचार किया है । उनके पूर्ण ब्रह्म रूप जन्म रहस्य में लिखा है –'जय जय कृष्ण पूर्ण कलेवर जगत कारण देव देव दामोदर ।' ब्रह्म कृष्ण के अतिरिक्त देवकी पुत्र कृष्ण, यशोदा पुत्र कृष्ण की लीलाओं का गायन अनेक रूपों में हुआ है । जिसे अग्रांकित रूप में रखा गया है- कृष्णलीला- ब्रजलीला- मथूरालीला- द्वारिकालीला, ब्रजलीला- गोकुललीला- बृंदावनलीला, लौकिक और अलौकिक लीला तीनों के अंतर्गत हैं ।

प्रत्येक वर्ग की लीला का माधवदेव ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है लेकिन इनमें गोकुल लीला में बाल-लीला बहुत महत्त्वपूर्ण है । असमिया में 'पीना' क्रिया का प्रयोग नहीं होता है । वहाँ हर चीज खायी जाती है, किन्तु बरगीत में माधवदेव जी ने 'पीना' क्रिया का प्रयोग किया है यथा

'गोविंद दूध पिउ दूध पिउ बोले रे योशदा ।' पीना क्रिया के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि ब्रजावली हिंदी के निकट पड़ती है । उनकी बाल लीलाओं के वर्णन के कारण ही उन्हें असमिया का 'सूरदास' कहा जाता है ।

'मागध' जी ने लिखा है- "माधवदेव के ब्रजावली में अंकित कृष्ण के चरित्र के विश्लेषण से इस सिद्धांत में उपनीत हो सकते है कि कृष्ण चरित्र की भावभूमि विषयगत संस्कृत आत्मग्राह अधिक है ।"[३०] तात्पर्य यह है कि माधवदेव ने कृष्ण के चरित्र को गंभीरतापूर्वक विचार कर उनके अलौकिक और लौकिक दोनों प्रकार की क्रीड़ाओं का वर्णन किया है ।

सन 1971 ई॰ में उनका पहला लेख 'शंकरदेव : मूल्यांकन की समस्या' प्रकाशित हुई । लेख हिंदी में होने के कारण असमिया पाठकों का ध्यान प्राय: कम ही गया । स्व॰ श्री बापचन्द्र महंत द्वारा 'शंकरदेवर मूल्यायोनोर सोमोस्या' नाम से इसका अनुवाद कर नीलांचल में प्रकाशित होते ही सबका ध्यान उनकी ओर गया ।

'छावालर वाणी हेन अनुमानि, मनेहुईबा परितोष' में 'मागध' जी ने यह सिद्ध किया कि 'हरिश्चंद्र उपाख्यान' शंकरदेव के बचपन की रचना नहीं है बल्कि उन्होंने विनम्रतावश वैसा लिखा है । शंकरी साहित्य के अध्येताओं में अधिकांश लोगों ने उपर्युक्त उक्ति के आधार पर शंकरदेव के बचपन की रचना माना था, जिसे 'मागध' जी ने पूरी तरह खंडित किया है ।

अंग्रेजी में रचित निबंध ज़्यादातर दूसरों के आग्रह पर लिखा है 'Maheswar Neog: A critic and literary historian' निबंध में प्रो॰ डॉ॰ महेश्वर नेओग के आलोचक रूप और उनके इतिहास लेखक रूप का विशद वर्णन हुआ है । 'शंकरदेव: ए ट्रेंड सेटर इन असमीज' शीर्षक निबंध में शंकरदेव ने जिन काव्य रूपों का वर्णन किया है उसका विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत वर्णन किया गया है । निष्कर्ष रूप में लेखक ने कहा है "Sankardev raised poetry for above the petty pursuits of mundane life on the hand and linked bhakti with the higher values of life on

the other. For the need ful the new poetic genres evolved by him thus defied the old canoes of Sanskrit poetics."[३१]

मणिपुर में (Iscon) इस्कन के सम्मेलन में पढ़ा गया डॉ॰ 'मागध' का निबंध 'Bhagavat culture: Means of Peace and Harmony' भी काफ़ी लंबा है । उसमें पुराणों विशेषत: भागवत पुराण के आधार पर समाज में शांति और परस्परिक सौहार्द भाव को बनाये रखने पर गंभीरता से विचार हुआ है । यह निबंध 11 अगस्त 1993 को पढ़ा गया था, उसमें महाभारत से एक श्लोक को उद्धृत करते हुए समाज में शांति स्थापना के लिए क्या करणीय है, इसपर विचार हुआ है । यथा-

'न राज्य न राजासी न दंडो न च दांडिक ।

धर्मेनेव प्रजा सर्व: रक्षत्रिस्य परस्परम ॥'

डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग द्वारा श्री अनिरुद्ध देव की जयंती के अवसर पर आयोजित तीन दिवसीय सेमिनार 'The bhakti movement and acculturation of the subaitens' (मई 1999) के अवसर पर बीज व्याख्यान में डॉ॰ 'मागध' ने जहाँ अनुरुद्ध देव की बातें की वहीं समस्त भारतीय परिप्रेक्ष्य में खासकर गुरुनानक, कबीर, तुलसी आदि की पंक्तियों को रखते हुए बताया कि भक्ति धर्म में जात-पात नाम की चीज नहीं थी । उनलोगों ने नाम जप को सर्वाधिक महत्त्व दिया और उससे दलितों का उद्धार करने में काफ़ी मदद मिली । दलित लोग वैष्णव भक्ति की ओर आकृष्ट हुए । विशेषत: अनिरुद्ध देव द्वारा असम के पूर्वोत्तर क्षेत्र में बसी जन-जातियों के मध्य वैष्णव भक्ति प्रचार करने में काफ़ी मदद मिली । डॉ॰ 'मागध' ने अपने रचनाओं में विस्तार से इन पर विचार किया है ।

5.3 ऐतिहासिक आलोचना :

'मागध' जी द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक आलोचना गवेषणात्मक ही है । इस कोटि की रचनाओं में 'मागध' जी द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रंथ और निबंध आती हैं-

(क) असम प्रांतीय राम साहित्य

(ख) असम और पूर्वञ्चल में पुस्तक चित्रांकन कला

(ग) असमिया ब्रजावली पद्य साहित्य

(घ) अनंत कंदली रामायण

(ङ) रामचरित मानस का प्रथम असमिया अनुवाद

(च) असम में वैष्णवमत का उद्भव और विकास

(छ) असमिया साहित्य में कृष्ण

(ज) असमिया भाषा और साहित्य

'असम प्रांतीय राम साहित्य' में 'मागध' जी ने असम प्रांतीय, असमिया भाषा में, असमिया साहित्यकारों द्वारा प्रणीत रामायण तथा रामकथापरक साहित्य की विस्तृत आलोचना की है । यह आलोचनात्मक ग्रंथ ऐतिहासिक आलोचना के अंतर्गत आती है । इस ग्रंथ में चार अध्याय है । यहाँ राम कथा की पौराणिकता, महत्ता, वैष्णव मत का विकास, असम में रामाख्यान, असमिया साहित्य में राम, असमिया कवियों द्वारा प्रणीत रामाख्यान मुलक कृति, नाटक, संस्कृत से असमिया में अनूदित रामाख्यान और असम की दो जनगोष्टीय भाषा करबी और खामती भाषी रामायण पर विस्तृत आलोचना की गयी है ।

स्वयं 'मागध' जी ने अपने द्वारा कृत इस आलोचनात्मक ग्रंथ पर विचार करते हुए कहा है कि अपने विषय को समग्रता से प्रस्तुत करनेवाली यह न केवल पहली बल्कि अद्यावधि की एकमात्र पुस्तक है जिसमें राम कथा पर आद्धृत कृतियों के असम प्रांतीय कृतिकारों की परमार्थ चेतना, काव्य चेतना और समाज चेतना का वस्तुन्मुख, सम्यक और प्रमाणिक विवेचन किया गया है ।

डॉ. धर्मदेव तिवारी ने 'मागध' जी के असम प्रांतीय राम साहित्य पर टिप्पण करते हुए कहा है कि यह पुस्तक 'असम प्रांतीय राम साहित्य' रामाख्यानक परंपरा को समझने – बूझने में काफ़ी हद तक सहायक होगी साथ ही देश की एकता को नई दिशा, नई चेतना भी देगी ।'[३२]

प्रस्तुत ग्रंथ पर भूपेन्द्र सिंह ने अपने शोध प्रबंध में टिप्पण करते हुए कहा है "कृष्ण कथा और कृष्ण भक्ति से आप्लावित असम राज्य में असमी साहित्यकारों द्वारा असमिया भाषा में प्रणीत रामायण और रामकथात्मक साहित्यों का विस्तृत अध्ययन-अनुशीलन 'असम प्रांतीय राम साहित्य' पुस्तक में किया गया है ।"[३३]

'मागध' जी द्वारा प्रणीत ग्रंथ पर प्रकाश डालने से पूर्व यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक बनता है कि असमिया भाषा में श्रीमती केशदा महंत ने रामायणी साहित्य पर जो ग्रंथ(असमिया रामायणी साहित्य: कथावस्तुर आति-गुरि)) लिखी, वह उल्लेखनीय है । डॉ॰ प्रदीप ज्योति महंत ने उक्त ग्रंथ के संदर्भ में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है "दो खंडों में विभक्त 'असमिया रामायणी साहित्य: कथावस्तुर आति-गुरि' नामक ग्रंथ श्री मती केशदा महंत की एकलव्य साधना का फल है । असम और असमिया भाषा में रचित रामकथा का संक्षेप में परिचय प्रस्तुत करने के दौरान असम और भारतवर्ष के रामकथात्मक साहित्य के सेतु को साफ समझ पाना संभव हुआ । वैदिक साहित्य के रामकथा को आधार स्वरूप ग्रहण कर भारतवर्ष के अन्यान्य प्रांत में रामकथा का चित्र-विचित्र रूप, हरिहर विप्र माधव कंदली रामायण, श्रीमंत शंकरदेव का उत्तराकांड रामायण तथा अन्य रामाख्यान मूलक कहानियों पर कई दृष्टि से आलोचना की गयी है ।"[३४] इस पुस्तक में असम तथा भारत के भिन्न प्रान्तों के रामकथा पर विचार किया गया है । केशदा जी ने अथक परिश्रम कर और अपनी अध्ययनशीलता से प्रस्तुत ग्रंथ की रचना की है । इस पुस्तक का प्रसंग भर उल्लेखकर अब हम 'मागध' जी द्वारा प्रणीत पुस्तक पर विचार करेंगे, जो इस शोध प्रबंध का विषय है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में चार अध्याय है । प्रथम अध्याय है उपक्रम । इस अध्याय में रामकथा की प्राचीनता, महत्ता, असम में वैष्णव मत का विकास, राम कथात्मक साहित्य की पृष्ठभूमि, असम

में साहित्य से परे अन्य कलाओं में राम, रामाख्यान की अभिव्यक्ति आदि पर विचार किया गया है । द्वितीय अध्याय में असमिया रामसाहित्य पर विचार किया गया है । इस अध्याय के पहले उपखंड में सप्तकाण्ड रामायण और दूसरे उपखंड में असमिया कवियों द्वारा प्रणीत रामाख्यानक कृतियों, तीसरे उपखंड में रामकथात्मक असमिया नाटकों और चौथे उपखंड में संस्कृत और हिंदी से असमिया में अनूदित रामायण पर विचार-विमर्श किया गया है । तृतीय अध्याय में करबी (साबिन आलून) और खामती (लिक चाओं लामाइ) पर गंभीरता से विचार किया गया है । चतुर्थ अध्याय 'एतद्धिरामायण' में सम्पूर्ण पुस्तक के अध्याय से प्राप्त निष्कर्ष को एकत्र रूप में प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत कृति के परिशिष्ठ 'रामचरितमानस' के प्रथम असमिया अनुवादक श्री कान्त सूर्यविप्र के वंशवृक्ष के साथ ही अंकिया नाटककारों का परिचय दिया गया है ।

आलोच्य ग्रंथ का विश्लेषण करने पर निम्नोक्त बातें स्पष्ट होती है- 'पुरोवाक' में असमिया राम-साहित्य से संबंधित पूर्व प्रकाशित सामग्री का विवरण देते हुए लेखक ने श्री लेखारू के 'असमिया रामायण साहित्य' तथा डॉ॰ सत्येन्द्रनाथ शर्मा की 'दि रामायण' की विशेष रूप से चर्चा की है जिससे प्रस्तुत अध्ययन की परंपरा और प्रेरणा का सामान्य परिचय मिलता है । प्रथम अध्याय 'आदौ रामतपोवनादि गमनम' शीर्षक से उपक्रम लिखा गया है । यहाँ लेखक के अनुसार असम में रामोपासना अथवा राम भक्ति संप्रदाय विशेष के रूप में कभी विकसित अथवा प्रचारित नहीं हुई । यहाँ उत्तर मध्यकालीन नव वैष्णव-भक्ति आंदोलन में नारायण विष्णु के नर अवतार के रूप में कृष्ण यानी विष्णु रूपी कृष्ण निर्गुण और निराकार रूप में ही इष्ट या आराध्य देव स्वीकृत हुए । एकमात्र उन्हीं की शरण प्राप्त करना ही एकशरणीया नामधर्म का मूल उद्देश्य है । असमिया वैष्णव भक्ति का सामान्य बीज मंत्र 'राम कृष्ण नारायण हरि' विष्णु कृष्ण से राम की अभिन्नता का द्योतक है, कृष्ण भिन्न रामोपासक सांप्रदायिक उद्गार नहीं ।[३५]

वैसे राम और कृष्ण की अभिन्नता सभी वैष्णव भक्ति संप्रदायों में मान्य रही है पर रामकाव्य के संदर्भ में लेखक की अवधारणा एक विशिष्ट तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, जो विचारणीय है । असमिया राम साहित्य की परंपरा का उल्लेख करते हुए इस

ऐतिहासिक तथ्य का प्रमाण सम्मत निर्देश किया गया है कि "असम में उत्तर मध्यकालीन नव्य वैष्णव भक्ति आंदोलन का प्रवर्तन किया शंकरदेव ने पंद्रहवीं शती के प्राय: अंतिम दशक में किन्तु रामचरित सम्बन्धी प्रथम असमिया काव्य 'पंचकांड रामायण' का प्रणयन माधव कंदली ने उसके पूर्व ही सन1400 ई॰ के आस-पास किया था ।"[३६] इस तथ्य के उपस्थापन से 'मागध' जी की अध्ययनशीलता और अनुसंधान पुष्टता का पता चलता है । प्रस्तुत ग्रंथ का दूसरा अध्याय है 'असमिया राम साहित्य' । इस अध्याय के अंतर्गत 'सप्तकांड के रामायणकार', 'अन्य राम कथाकार', 'रामकथा विषयक असमिया नाटक' तथा अनूदित 'राम साहित्य' पर चर्चा की गयी है । चार खंडों में विभक्त इस अध्याय के पहले खण्ड में सर्वप्रथम 'सप्तकाण्ड रामायण' शब्द से एक विशिष्ट अर्थ का बोधन किया गया है जिसका 'मागध' जी के अनुसार अर्थ है तीन कवियों द्वारा रचित रामचरित सम्बन्धी काव्य ग्रंथों का एकत्र रूप और इन पर 'मागध' जी ने अपना विचार भी स्पष्ट किया है । इनके जीवनवृत का प्रमाणिक परिचय देते हुए कथा-विधान, चरित चित्रण, काव्य सौष्ठव, वस्तु वर्णन, भाषा एवं संवाद, दर्शन एवं भक्ति आदि विभिन्न संदर्भों में लेखक की कुछ निजी मौलिक स्थापनाएँ उललेखयोग्य है । यह तीन ग्रंथ तथा उनपर 'मागध' जी के विचार हैं- (i) माधव कंदली कृत 'पंचकाण्ड रामायण' जो 1400 ई॰ के लगभग रचित है । इस पर 'मागध' जी ने विचार करते हुए कहा है पंचकाण्ड रामायण न केवल असमिया बल्कि सभी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में अपने विषय की पहली कृति है (पृ 120), (ii) शंकरदेव कृत 'उत्तरकाण्ड रामायण' जो 1540 ई॰ से 1560 ई॰ के भीतर रचित है । इस पर 'मागध' जी का मत रहा कि यह मूलत: भक्तिपरक रचना है । (iii) माधवदेव कृत 'आदिकाण्ड रामायण' जो 1550-60 ई॰ के भीतर रची गयी । 'मागध जी का विचार है माधवदेव का आदिकाण्ड न तो वाल्मीकि रामायण के आदिकाण्ड का अनुवाद है और न कृतिवास की रामायण पर आधारित । ..... आदिकाण्ड रामायण माधवदेव की मौलिक निर्मिति है (पृ 141) ।

कुछ–कुछ धारणाओं से असहमत होने पर भी 'मागध' जी के तर्क और निष्कर्ष मौलिक एवं विचारणीय है । इस अध्याय के दूसरे खंड में अन्य असमिया रामकथाकारों के जीवनवृत तथा

उनकी रचनाओं का परिचय एवं मूल्यांकन है । इनमें हरिहर विप्र का 'लव-कुशर युद्ध', अनंत कृत 'रामायण', तीर्थनाथ गोस्वामी कृत 'रामवनवास', 'सीताहरण', ज्योतिप्रसाद अगरवाला कृत 'ज्योतिरामायण' उल्लेखनीय हैं । अध्याय के तीसरे खंड में 'रामकथा विषयक' असमिया नाटक' शीर्षक से राम कथा आश्रित असमिया नाटक परंपरा का उल्लेख करते हुए शंकरदेव कृत 'रामविजय'(1568ई॰) से लेकर रोहिणीकुमार शर्मा के 'सीताहरण'(1973ई॰) तक 76 नाट्यकृतियों की चर्चा की गयी है और इस तथ्य पर बल दिया गया है कि प्राय: सभी नाटकों में कथावस्तु का ग्रहण सीधे वाल्मीकि रामायण से नहीं वरन उस पर आधारित असमिया और बंगला रामायणों से हुआ है ।(पृ 327) अध्याय के चौथे खण्ड में 'अनूदित राम साहित्य' शीर्षक से संस्कृत तथा हिंदी से अनूदित असमिया राम साहित्य पर चर्चा की गयी है । इस क्षेत्र में संस्कृत से अनूदित कृतियों में भी राम आता कृत 'अध्यात्म रामायण' और कमलेश्वर चलिहा कृत 'उत्तरकाण्ड रामायण' तथा हिंदी से अनूदित कृतियों में श्रीकान्त सूर्यविप्र कृत 'तुलसीदासी रामायण' कृतनाथ शर्मा कृत हिंदी रामायण और महंत दंपत्ति द्वारा प्रणीत 'श्री राम चरित मानस' उल्लेखनीय है ।

तृतीय अध्याय के अंतर्गत 'असमिया भिन्न' भाषाओं का 'राम साहित्य' शीर्षक से करबी रामायण (साबिन आलुन) तथा खामति रामायण (लिक चाओं लामाइ) का सामान्य परिचय उपस्थित किया है । उनका कथासार, वैशिष्ठ्य तथा परिवेश विषयक विशेषताओं का विवेचन किया है । 'साबिन आलुन' की रामकथा वाल्मिकीय परंपरा की होकर भी लोक मानस की उपज है और खामति रामायण की 'सुत्त पिटक' के आधार पर रचित कहा गया है । यद्यपि लेखक की धारणा है कि उक्त रामायण का आधार कोई बोधकथा न होकर वाल्मिकीय रामायण परंपरा की ही रामकथा प्रतीत होती है । बौद्ध राम साहित्य की बहुमूल्य कृति के रूप में 'खामति रामायण' का ऐतिहासिक महत्त्व प्रत्यक्ष है ।

चतुर्थ अध्याय निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसके अंतर्गत 'एतद्धि रामायण' नाम से प्रस्तुत है । यहाँ समस्त विवेचन का सारांश देते हुए असमिया राम साहित्य के हनुमान और सीता के चित्रांकन की विशेष मौलिकता की ओर संकेत किया है ।

अंत में कह सकते है कि 'असम प्रांतीय राम साहित्य' असंदिग्ध रूप से गवेषक लेखक 'मागध' की गहन अध्ययन, अनुसंधान तथा अध्यवसाय का द्योतक है । यह ग्रंथ उत्तर-पूर्वी भारत के राम साहित्य विषयक हिंदी आलोचना एवं गवेषणा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है । यह कृति राम के आख्यान परंपरा को समझने-बुझने में काफ़ी हद तक सहायक होगी, साथ ही देश की एकता को नई दिशा और चेतना भी देगी । राम एक ऐसे पुरुष रहें है, जिनके चरित्र से हम आशा, स्फूर्ति, साहस तथा अदम्य शक्ति ग्रहण करते है । इसी कारण से कई भारतीय भाषाओं में रामकथा का अंकन और राम के चरित्र को आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । लगातार विखंडन की ओर जा रहे हमारे समाज को बचाने के लिए, इस परिस्थिति से निकलने के लिए, समाज को संगठित करने के लिए राम-कथा का स्मरण आवश्यक है । इस संदर्भ डॉ॰ 'मागध' कृत 'असम प्रांतीय राम साहित्य' सराहनीय कृति है ।

समीक्षक देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने प्रस्तुत पुस्तक के संदर्भ में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है कि "असम प्रांत, विशेष रूप से असमिया भाषा में प्रणीत राम साहित्य के समग्र विकास का सम्यक, प्रमाणिक, विवेचन-विश्लेषण अभी तक नहीं हो सका था । असमिया तथा पूर्वाञ्चल की भाषाओं के साहित्य की परम्पराओं के जानकार प्रबुद्ध समीक्षक 'मागध' की कृति 'असम प्रांतीय राम साहित्य' सर्वथा एक अभिनंदनीय प्रयास है ।"[३७]

'असम और पूर्वञ्चल में पुस्तक चित्रांकन कला' में मागध जी ने रेखा, रंग और रूप के माध्यम से किसी वस्तु के चित्रण करने को चित्रकार स्वीकार किया है । पूरे निबंध में मणिपुरी खामति और कामरूपी (असमिया) पुस्तक चित्रांकन कला पर विचार हुआ है; लेखक ने स्वीकार किया है कि मणिपुरी चित्रांकन में ज्योतिष के तत्वों को महत्त्व मिला है । खामति शैली, खामति बौद्ध विहारों की मूल देन है । नारायणपुर (असम) और चौथम (अरुणाचल) के बौद्ध विहारों में खामती चित्रकला विद्यमान है लेकिन उनका तिथि निर्धारण करना संभव नहीं है । अधिकांश चित्र गौतमबुद्ध तथा बौद्ध मान्यता के अनुरूप है ।

कामरूपी अर्थात असमिया चित्रकला का इतिहास अधिक प्राचीन है । गुरु चरितों के उल्लेख से पता चलता है कि शंकरदेव ने 'चिह्नयात्रा' नामक नाटक के लिए स्वयं चित्र बनाया था । हव्नेसांग ने भाष्कर वर्मा के महलों में चित्र देखे थे । वाणभट्ट ने हर्षचरित में उल्लेख किया है कि भाष्कर वर्मा ने हर्षवर्द्धन को जो उपहार भेंजे थे उनमें चित्र फलकों के जोड़े (आलेख फ़लक संपुट) भी थे । भक्ति आंदोलन के समय वैष्णव संतों एवं राजदरवारों में पुस्तक चित्रांकन कला खूब पनपी । उदाहरण स्वरूप श्रीमद भागवत और हस्तिविद्यार्णव के नाम लिए जा सकते है । ये दोनों क्रमश: सत्रिया चित्रांकन कला और दरवारी चित्रांकन कला के उदाहरण प्रस्तुत करते है । राजाश्रय में चित्रांकित 'दरंग राज वंशावली' धर्म निरपेक्ष पोथी है । अहोम राजा रुद्र सिंह(1686-1714 ई॰) एवं शिव सिंह (1714-1744 ई॰) के राजाश्रय में असम की राजाश्रित चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी । राजा शिवसिंह के आश्रय में सुकुमार बरकान्थ द्वारा प्रणीत एवं दिलबर और दोषाइ द्वारा चित्रांकित पोथी 'हस्तिविद्यार्णव' इसमें बेजोड़ ठहरती है । अंग्रेजों के पहले तक असम शासकों ने चित्रण करनेवाले कलाकारों को राजाश्रय दिया था । सत्रों में चित्रांकन की भागवतीय शैली का भी प्रभाव है । ईसा की सत्तरहवीं-अठारहवीं शताब्दी में दोनों आश्रमों में पुस्तक चित्रांकन कला अपने उत्कर्ष पर थी । निश्चय ही यह निबंध अपने ढंग का अकेला है जिसमें पुस्तक चित्रांकन कला का इतिहास वर्णित है ।

हिंदी और असमिया भक्ति साहित्य के पुरोधा, पुराणेतिहास के चिंतक डॉ॰ 'मागध' की उपरिविवेचित कृतियों के अतिरिक्त 'असमिया ब्रजावली पद्य साहित्य' अभी तक अर्द्धमुद्रित अवस्था में है । कारण यह है कि यह पुस्तक असम राष्ट्रभाषा प्रसार समिति छपवा रही थी, अभी केवल आठ फर्म(128) पृष्ठ ही मुद्रित हुई थी कि विरोधियों ने मूल प्रतिलिपि ही प्रेस से गायब करवा दी । मुद्रित अंश में केवल गीतकारों के परिचय ही है । मूल पाठ मुद्रित नहीं हो सका । कुछ लोगों ने 'मागध' जी को राय दी कि 'आप असम राष्ट्रभाषा के प्रधान सचिव और साहित्य सचिव पर मुकदमा कीजिए चूँकि आपके पास उन दोनों के लिखित पत्र वर्तमान है, लेकिन 'मागध' जी ने वैसा नहीं किया और लोगों को बताया, मैं उनके खिलाफ मुकदमा नहीं करूँगा क्योंकि जिस मातृ-

संस्था ने असम में हिंदी का प्रचार किया उसके खिलाफ मुकदमा करने का अर्थ होगा मेरी अपनी बदनामी, लोग यही कहेंगे कि एक हिंदी भाषी ने ही हिंदी प्रचारक संस्था के खिलाफ कार्य किया । अत: इससे मेरी हानि हो जाए वह मंजूर है लेकिन संस्था बदनाम न हो । 'मागध' जी का यह कार्य अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा लेकिन उससे बहुत बड़ी क्षति यह हुई कि लगभग चार सौ गीत सामने नहीं आ सके ।

लेखक का विश्वास है कि यदि वे गीत छपकर पाठकों के सामने आते तो निश्चय ही एक दूसरी स्थिति होती । डॉ॰ सुकुमार सेन के 'ब्रजबूलि लिटरेचर' का महत्त्व जो आज तक है, शायद वह नहीं रहता । डॉ॰ 'मागध' का ब्रजावली पद्य साहित्य प्रकाशित हो जाने के बाद हिंदी साहित्य के इतिहास में एक नया मोड़ आया ।

'अनंत कंदली रामायण' में केवल तीन कांड है और वे तीनों कांड मूल के अनुवाद जैसे हैं । अनंत कंदली का समय 1500-1600 ई॰ स्वीकार किया जाता है । ये कामरूप स्थित हाजो के हयग्रीव माधव के निकट के निवासी थे । इन्होंने संस्कृत और असमिया दोनों भाषाओं में रचना की है । रामायण के संप्रति अयोध्या, अरण्य और किस्किंधा ये तीन कांड उपलब्ध है । असंभव नहीं कि उन्होंने पूर्ण रचना की हो पर वे संप्रति अनुपलब्ध है । अनंत कंदली ने न केवल वाल्मीकि बल्कि माधव कंदली का ऋण भी स्वीकार किया है । उनकी उक्ति "माधव कंदली विरचिला रामायण, ताक शुनी आमार कौतुक करे मन" से स्पष्ट है कि वे माधव कंदली से प्रेरित एवं प्रभावित हुए है । डॉ॰ 'मागध' ने उपलब्ध काण्डों का मूल से मिला कर परीक्षण करते हुए कहा कि काव्यकारिता और उनके भक्ति मानस को प्रतिबिम्बित करने में यह समर्थ है ।

'रामचरित मानस का प्रथम असमिया अनुवाद' महाराज कमलेश्वर सिंह के प्रधानमंत्री पूर्णनाद बुढ़ा गोहाई के संरक्षण में 1786 ई॰ में श्रीकान्त सूर्यविप्र ने अनुवाद किया था । यह असमिया की ही नहीं बल्कि किसी भी भाषा में रामचरितमानस का किया गया पहला अनुवाद है । पहले केवल इसका लंकाकाण्ड उपलब्ध था लेकिन मानस चर्तुशती समारोह वर्ष में 'मागध' जी के

प्रयत्नों से इसका उत्तरकाण्ड भी श्रीमती केशदा महंत ने खोज निकाला । वस्तुतः यह शुद्ध अनुवाद तो नहीं, बीच-बीच में श्रीकांत सूर्यविप्र ने अपनी ओर से भक्तिपरक पंक्तियाँ जोड़ी हैं । असमिया जनता में यह हंसकाकी रामायण (काग गरुड़ संवाद के कारण) नाम से प्रचलित है । डॉ॰ 'मागध' इस पर ध्यान नहीं देते तो शायद यह अंधकार में ही पड़ा रहता और रामचरितमानस का प्राचीनतम और प्रथम अनुवाद के संबंध में कोई ज्ञात नहीं होता ।

सब मिलाकर श्रीकांत कृत 'तुलसीदास रामायण' एक उत्तम अनूदित कृति है । इसमें 'रामचरित मानस' की आत्मा अपरिवर्तित है । अधिकांश अंश प्रायः सम-प्रवाही छंद पद में ही अनूदित हुई है । ऐतिहासिक दृष्टि से श्रीकांत की यह कृति इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसने एक नयी और अनछुई जमीन गोडी है । इसके पूर्व तक मात्र संस्कृत की कृतियाँ ही असमिया में अनूदित होती रही थी । बे-लीक चलने की पहली बार हिम्मत कर श्रीकांत ने सफलता पूर्वक यह संकेत कर दिया कि असमिया साहित्य भंडार की संबृद्धि के लिए न केवल संस्कृत बल्कि आधुनिक भारतीय भाषाओं और वह भी (पश्चिमी) हिंदी की महत्त्वपूर्ण कृतियों को अनूदित करने की आवश्यकता है । यह कम महत्त्व की बात नहीं कि अब तक शायद ही किसी आधुनिक भारतीय भाषा में रामचरितमानस अनूदित हुआ है ।

'असम में वैष्णव मत का उद्भव और विकास'(ओरिजिन एण्ड डेवेलपमेंट ऑफ वैष्णवविज्म इन असम) ये दो व्याख्यान डॉ॰ 'मागध' ने श्री आतमबापू शर्मा व्याख्यान माला के अंतर्गत प्रस्तुत किया है । पहले व्याख्यान में आदि से लेकर शंकरदेव पूर्व तक और दूसरे व्याख्यान में श्रीमंत शंकरदेव से आरंभ कर वर्तमान तक के समय में वैष्णव मत की स्थिति पर विस्तार पूर्वक विचार किया है । 'मागध' जी के अनुसार मगध के अग्निवंशी शासकों के काल में ही असम में वैष्णव मत के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ होगा परंतु वास्तविक आरंभ गुप्त शासकों के समय में ही हुआ होगा । वैष्णव मत को सर्वथा नवीन रूप में प्रवर्तित करने का श्रेय

श्रीमंत शंकरदेव को ही जाता है । संप्रति असम में वैष्णव मत कई भागों में बंटकर आगे बढ़ रहा है परंतु प्रत्येक के मूल में श्रीमंत शंकरदेव द्वारा प्रतिपादित मान्यता ही प्रमुखता प्राप्त करती है ।

'असमिया साहित्य में कृष्ण' असम साहित्य सभा (1985) के स्मृतिग्रंथ में प्रकाशित लेख है । लेख के शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि यह ऐतिहासिक आलोचना के वर्ग में आता है । इस लेख में असमिया साहित्य में वर्णित कृष्ण का विवरण कालक्रमिक रूप में उपस्थित किया गया है ।

'असमिया भाषा और साहित्य' 'मागध' जी द्वारा प्रणीत लेख है । इस लेख को डॉ॰ गणपति चंद्र गुप्त के आग्रह पर 'मागध' जी ने लिखा था, जिसे उनके द्वारा संपादित विश्वकोश में प्रकाशित किया गया था । इस दीर्घ लेख में वर्णित विषय का ब्योरेवार कालक्रमिक वर्णन हुआ है । लेखक ने किसी पर अपना मंतव्य न रखते हुए असमिया भाषा और साहित्यकारों का तथ्यपरक विवरण प्रस्तुत किया है । परंतु इसका प्रकाशन गुप्त जी के आकस्मिक मृत्यु के कारण नहीं हो पाया है । विश्वकोश के प्रथम खण्ड में ही इस लेख का प्रकाशन होना है ।

'मागध' जी के इन असमिया ऐतिहासिक समालोचना से कई अज्ञात तथ्यों के बारे में हम ज्ञात हो सके हैं, इनमें से कुछ एक का उल्लेख करना उचित होगा-

ब्रजावली के पहले कवि श्रीमंत शंकरदेव है, बंगाल के शासक हुसैन शाह (1493-1519) के दरबारी कवि यशोराज (हिस्ट्री ऑफ ब्रजबुलि लिट्रेचर, पृष्ठ संख्या 23) नहीं । श्रीमंत शंकरदेव ने सन 1488 ई॰ के आस-पास ही 'मन मेरि राम चरणोहि लागु' शीर्षक बरगीत की रचना की थी । कथा गुरु चरित में इसके पूर्व ही सन 1479 ई॰ में 'राम मेरि हृदय ..... पंकज' की रचना का उल्लेख मिलता है । इस तथ्य का ज्ञान 'मागध' जी की तीक्ष्ण दृष्टि के कारण ही हो पाया है । असमिया में कुल चार प्रेम आख्यान मूलक काव्य रचे गए हैं । वे चारों काव्य वैष्णव कवि की रचना है परंतु उनका मुख्य स्रोत उन्हीं नामोंवाले हिंदी प्रेम आख्यान मूलक काव्य है । इनमें सिर्फ विचार-धारा का ही अंतर है । असमिया में ही नहीं बल्कि अन्य भाषाओं में भी श्रीकान्त सूर्यविप्र कृत रचना ही 'रामचरित मानस' का प्रथम अनुवाद है । श्रीकान्त सूर्यविप्र ने आहोम नरेश कमलेश्वर सिंह के

महामंत्री पूर्णानन्द के आश्रय में सन 1794 ई॰ में 'रामचरित मानस' का पद्यबद्ध अनुवाद किया था । शंकरदेव का 'पारिजात हरण' नाटक उमापति के 'पारिजात हरण' नाटक से प्रभावित नहीं है । श्री शंकरदेव उसके बारे में ज्ञात ही नहीं थे । इन अज्ञात और नवीन तथ्यों का उदघाटन कर 'मागध' जी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । इस तरह 'मागध' जी के ऐतिहासिक आलोचना मूलक रचनाओं से कई तथ्यों का परिज्ञान हुआ ।

निष्कर्षत: स्पष्ट होता है कि 'मागध' जी ने असमिया आलोचनात्मक ग्रंथों के माध्यम से असम में वैष्णव मत के प्रचारक शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव तथा असमिया रामायणी साहित्य को राष्ट्रीय प्रेक्षापट में प्रतिष्ठित किया है । उनके साहित्यिक संरचनाओं का गहन अध्ययन कर इन महापुरुषों के सामाजिक एकता, प्रेम, मैत्री आदि विचारों को हमारे समक्ष रखा । असम प्रांत में रामायणी साहित्य पर हुए विभिन्न कृतियों की ओर हमारी दृष्टि आकर्षित की और उन पर गहन विचार किया । कहा जा सकता है कि उपरिवित रचनाएँ असंदिग्ध रूप से गवेषक लेखक 'मागध' की गहन अध्ययन, अनुसंधान तथा अध्यवसाय का द्योतक है । रामकथा पर रचित ग्रंथ उत्तर-पूर्वी भारत के राम साहित्य विषयक हिंदी आलोचना एवं गवेषणा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है । लगातार विखंडन की ओर जा रहे हमारे समाज को बचाने के लिए, समाज को संगठित करने के लिए राम-कथा का स्मरण आवश्यक है । इन रचनाओं के जरिए न केवल असमिया बल्कि हिंदी आलोचना साहित्य में 'मागध' जी ने उल्लेखनीय योगदान दिया और राष्ट्रीय स्तर पर असम में वैष्णव धर्म के प्रवर्तन करनेवाले शंकरदेव और माधवदेव को प्रतिष्ठित किया एवं असम प्रांत के रामायणी साहित्य के जरिए भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है । उनके गवेषणापुष्ट असमिया आलोचना से शंकरदेव, माधवदेव, वैष्णव साहित्य, असमिया रामायणी साहित्य के कई अनदेखे पहलू सामने आए और असमिया से परे हिंदी साहित्य और हिंदी साहित्य के अध्येता उससे रुबरु हो सके ।

संदर्भ सूची:

१. 'मागध', डॉ॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *हिंदी साहित्य : युग और धारा*, भारती भवन, पटना, 1965 पृष्ठ संख्या 79

२. 'मागध', डॉ॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *काव्यशास्त्र विमर्श*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 68

३. 'मागध', *सूरदास और शंकरदेव के कृष्णभक्ति काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन*, डी. लिट. शोध प्रबंध, 1973, पृष्ठ संख्या 112

४. नाथ, अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद मागध : व्यक्तित्व और कृतित्व*, अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 125

५. 'मागध',(अनु॰ एवं सम्पा॰-नाथ, अनंत), *शंकरदेवर काव्यादर्श*, निबंध संग्रह, बांधब प्रकाशन, गुवाहाटी, 2009, पृष्ठ संख्या 87

६. हिंदी तथा असमिया में भारतेन्दु कालीन नयी चेतना, भारतेन्दु: पुनर्मूल्यांकन के परिदृश्य, के.हि.स., आगरा, 1983, पृष्ठ संख्या 208

७. मागध', डॉ॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *अलंकार विमर्श*, साथी प्रकाशन, सागर, 1968, पृष्ठ संख्या 4

८. 'मागध' हिंदी और असमिया के 'मधुमालती' संज्ञक काव्य, प्रगति, 1983, हिंदी और असमिया के मृगावती संज्ञक काव्य, प्रगति, 1984 पृष्ठ संख्या 12

९. 'मागध' हिंदी और असमिया के 'मधुमालती' संज्ञक काव्य, प्रगति, 1983, हिंदी और असमिया के मृगावती संज्ञक काव्य, प्रगति, 1984 पृष्ठ संख्या 24

१०. आलोक पत्रिका, 19अप्रेल, 1976

११. 'मागध', *शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक*, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला,1976, पृष्ठ संख्या ट

१२. 'मागध', *शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक,* पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला,1976, पृष्ठ संख्या 20

१३. 'मागध', *शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक,* पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला,1976, पृष्ठ संख्या, 45

१४. 'मागध', *शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक,* पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला,1976, पृष्ठ संख्या 135

१५. 'मागध', *शंकरदेव : साहित्यकार और विचारक,* पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला,1976, पृष्ठ संख्या 3-4

१६. नाथ, अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद मागध : व्यक्तित्व और कृतित्व*, अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 125

१७. नाथ, अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद मागध : व्यक्तित्व और कृतित्व*, अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 126

१८. 'मागध', *माधवदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व*, पू. मा. स., गुवाहाटी, 1979, पृष्ठ संख्या 32

१९. 'मागध', *माधवदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व,* पू. मा. स., गुवाहाटी, 1979, पृष्ठ संख्या 123

२०. 'मागध', *माधवदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व,* पू. मा. स., गुवाहाटी, 1979, पृष्ठ संख्या 104

२१. काकती, डॉ॰वाणीकान्त, नामघोषा तत्व दर्शन, शुभ कथन पृष्ठ संख्या 4

२२. 'मागध', *माधवदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व*, पू. मा. स., गुवाहाटी, 1979, पृष्ठ संख्या 21

२३. 'मागध', *माधवदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व*, पू. मा. स., गुवाहाटी, 1979, पृष्ठ संख्या 21

२४. 'मागध', *माधवदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व*, पू. मा. स., गुवाहाटी, 1979, पृष्ठ संख्या 26

२५. प्रो॰ केशवानन्द देव गोस्वामी (डिब्रूगढ़) का डॉ॰ मागध के नाम एक पत्र, सन 1981 जो मागध जी के पास सुरक्षित है ।

२६. आलोक, नवंबर, 1980

२७. डॉ॰ रंजन सुरिदेव का 'परिषद पत्रिका', जुलाई में प्रकाशित पुस्तक समीक्षा

२८. 'मागध', *शंकरदेव के नाटक*, प्राच्य-भारती प्रकाशन, गुवाहाटी, 1975, पृष्ठ संख्या पुरोवाक

२९. 'मागध' और नाथ, *प्रो॰ अनंत कुमार, अददहमन विरचित संदेशरासक*, बांधव प्रकाशन, 2013, पृष्ठ संख्या 156

३०. 'मागध',(अनु॰ एवं सम्पा॰-नाथ, अनंत), *शंकरदेवर काव्यादर्श*, निबंध संग्रह, बांधब प्रकाशन, गुवाहाटी, 2009, पृष्ठ संख्या 122

३१. महेश्वर नेऔग : ए क्रिटिक एण्ड लिटेररी हिस्टोरियन (डॉ॰ महेश्वर अभिनंदन ग्रंथ में प्रकाशित)

३२. नाथ, अनंत कुमार,(सम्पा॰) *संस्कृति-साधक प्रो॰ कृष्णनारायण प्रसाद मागध : व्यक्तित्व और कृतित्व*, अभिनंदन समारोह समिति, गौहाटी, 2003, पृष्ठ संख्या 87

३३. सिंह, श्री भूपेन्द्र, *कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' व्यक्तित्व और कृतित्व,* शोध प्रबंध, 2004, पृष्ठ संख्या 64

३४. पद्मपाणि(सम्पा॰), *दृष्टि दर्शन दिगंता,* पद्मपाणि, गुवाहाटी, 2010, पृष्ठ संख्या 40

३५. 'मागध', *असम प्रांतीय राम साहित्य*, हिंदी विकास पीठ, मेरठ, 1985, पृष्ठ संख्या 15

३६. 'मागध', *असम प्रांतीय राम साहित्य*, हिंदी विकास पीठ, मेरठ, 1985, पृष्ठ संख्या 47

३७. सिंह, श्री भूपेन्द्र, *कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' व्यक्तित्व और कृतित्व*, शोध प्रबंध, 2004, पृष्ठ संख्या 66